संस्कृतवाङ्मय में वीरशैव-साहित्य

'मूल कन्नड़ लेखन
विद्वान् षण्मुखय्या अक्कूरमठ

हिन्दी रूपान्तरण एवं परिवर्धन
डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी
उपाचार्य, संस्कृत विभाग
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी-२२१००२



शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी

संस्कृतवाङ्मय में वीरशैव-साहित्य

मूल कन्नड़ लेखन
विद्वान् षणमुखय्या अक्कूरमठ

हिन्दी रूपान्तरण एवं परिवर्धन
डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी
उपाचार्य, संस्कृत-विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी - २२१००२

शैव भारती शोध प्रतिष्ठान
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी
२००३ ई.

प्रकाशक
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ीमठ
वाराणसी - २२१ ००१

प्रथम संस्करण २००३

मूल्य : १५०

ISBN 81-86768-61-0

अक्षर संयोजन
शिव शक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस
जंगमवाडीमठ, वाराणसी

मुद्रक
प्रिन्टेक
सी. २७/२७३, इन्डियन प्रेस कालोनी
मलदहिया, वाराणसी

समर्पण

श्रीज्ञानपीठाधीश्वर

पूज्य

जगद्गुरु

डॉ. चन्द्रशेखर

शिवाचार्य

महास्वामी जी

को

सप्रश्रय --'

'त्वदीयं

वस्तु

गोविन्द !

तुभ्यमेव

समर्पये.'

प्राक्कथन

यन्मनः प्रकृतिं वेत्ति यन्मनः पुरुषं परम्।
यन्मनः सर्वसिद्धार्थं तन्मनो भुक्तिमुक्तिदम्।।
यन्मनः शिवसङ्कल्पं यन्मनः शिवसन्निधौ।
यन्मनः प्राणिसेवायां तन्मनः शिवसन्निभम्।।
शिवे मनः समाधाय सदाचारः शिवार्थभाक्।
यः करोति शिवाचारं वीरशैवः स वै स्मृतः।।

भारतवर्ष संस्कृतभाषा की जन्मभूमि है। संस्कृत और संस्कृत वाङ्मय विश्व में प्राचीनतम हैं। 'वेद' विश्व के सर्वप्राचीन वाङ्मय हैं। संस्कृत को 'देववाणी' और वेद को 'देवकाव्य' कहा गया है — 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।' यह वेद सभी धर्मों का मूल भी माना गया है — 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।' मानव के साथ ही मानवधर्म का भी विकास हुआ। ज्यों-ज्यों मानव का बौद्धिक विकास हुआ, उसके चिन्तन-मनन को भी नये-नये आयाम और नयी दिशायें प्राप्त हुईं। फलतः मूल एक होते हुए भी, वृक्ष की शाखा-प्रशाखा की तरह धर्म का भी बहु-आयामी विकास हुआ। काल-गति के साथ ही अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का अभ्युदय हुआ।

शैव धर्म-दर्शन की प्राचीनता सर्व-प्रमाणित है। शिव को सृष्टि का एकमात्र कर्ता और नियामक मानने वाले आस्तिक भक्त 'शैव' कहलाते हैं। शैव धर्म-दर्शन के आचार्य-गुरुजनों के द्वारा निरन्तर शैवाचार-सिद्धान्तों का उपबृंहण होता रहा। फलतः शैवदर्शन में भी देश-काल और आचार्य-गुरुमत के वैशिष्ट्य से अनेक सम्प्रदायों का प्रवर्तन हुआ। इनमें से 'वीरशैव' सम्प्रदाय अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। यद्यपि वीरशैव सम्प्रदाय का भारत वर्ष में सर्वत्र प्रसार है तथापि दक्षिण भारत, विशेषतया कर्नाटक, आन्ध्र और महाराष्ट्र में इसकी व्याप्ति और महिमा विशेष उल्लेखनीय है।

संस्कृत और वीरशैव धर्म का सम्बन्ध भी प्राचीन काल से ही स्वयंसिद्ध है। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तग्रन्थ और प्रवचन मूलतः संस्कृत में ही उपन्यस्त हुए हैं। संस्कृत-वाङ्मय में विपुल वीरशैव साहित्य उपलब्ध है और अनुपलब्ध साहित्य के उल्लेख भी हमें पर्याप्तमात्रा में मिलते हैं। बाद में चलकर संस्कृत से कन्नड़, तेलुगू, तमिल, मराठी और हिन्दी भाषाओं में अनुवाद हुए और आज भी अनुवाद और शोधकार्य हो रहे हैं। साथ ही, कन्नड़, तेलुगू आदि भाषाओं में निर्मित वीरशैव ग्रन्थों में से कुछ के संस्कृत में भी अनुवाद हुए हैं।

संस्कृत में उपलब्ध वीरशैव साहित्य की जिज्ञासा के फलस्वरूप इसके अन्वेषण और विश्लेषण में विद्वानों ने विगत दशकों में रुचि दिखायी और इस दिशा में कुछ कार्य भी हुआ। कन्नड भाषा में ऐसा ही कार्य अध्यवसायपूर्वक पं. श्री षण्मुखय्या अक्कूरमठ ने किया और श्री एच. एन. यादवाड ने उसका हिन्दी अनुवाद 'संस्कृत में वीरशैव साहित्य' शीर्षक से किया। किन्तु अहिन्दीभाषी होने के कारण अनुवाद की भाषा अत्यन्त अशुद्ध और वाक्यविन्यास ऐसा भ्रष्ट कि मूलभाव ही समझ में न आए। ऐसी स्थिति में इस अमूल्य साहित्य को हिन्दी में उपलब्ध कराने हेतु नये सिरे से लेखन की आवश्यकता अनुभूत हुई।

श्रीजंगमवाड़ी मठ, वाराणसी के ज्ञानपीठाधीश्वर जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी की कृपामयी प्रेरणा से यह अल्पज्ञजन इस कार्य में प्रवृत्त हुआ जो हिन्दी और संस्कृत तो थोड़ी-बहुत जानता है किन्तु कन्नड़, तेलुगू एकदम नहीं। वीरशैव धर्म के प्रारम्भिक अति सामान्य ज्ञान से भी अच्छी तरह परिचित होने का वह दावा नहीं कर सकता तथापि ईश्वरेच्छा और पूज्य महास्वामीजी की पुण्य प्रेरणा से वह इस महत्त्वपूर्ण कार्य को यथाशक्ति सम्पन्न कर सका।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन हेतु यदि पूज्य महास्वामी जी ने प्रेरित करने के साथ ही यथेष्ट सामग्री न सुलभ करायी होती तो यह कार्य होना सर्वथा असम्भव था। अतः सविनय प्रणति निवेदन करते हुए उनके नित्य शुभाशीष का यह जन आकाङ्क्षी है। मूलग्रन्थ के लेखक श्री अक्कूरमठ और

अनुवादक श्री यादवाड का भी अत्यन्त आभार क्योंकि प्रस्तुत कर्तृत्व का आधार उनका ग्रन्थ ही है। भारतीय दर्शन और तन्त्रागम के विश्रुत विशिष्ट विद्वान् और शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ के निदेशक आदरणीय प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना लेखक का परमधर्म है जिन्होंने इस बाल-प्रयास को अपने अमूल्य सत्परामर्श से सार्थक बनाने में अहैतुकी कृपा की है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपना बहुमूल्य योगदान करने वाले समस्त प्रियजन भी हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। अन्ततः,

भक्ता जिज्ञासवः सर्वे पाठकाः श्रावकाश्च ये ।
कृपया विश्वनाथस्य भूतिभाजो भवन्तु ते ।।

इति शम्।।

वाराणसी — विदुषां वशंवद,
०१-०१-२००३ ई. — प्रभुनाथ द्विवेदी



विषयानुक्रम



अध्याय १

संस्कृत वाङ्मय में वीरशैव-साहित्य

प्रस्तावना

संस्कृत-भाषा

भारतवर्ष में अतीतकाल से, सहस्रों वर्षों से संस्कृत वाग्व्यहार की भाषा रही है। सम्भवतः समस्त सभ्य संसार की यह प्राचीनतम भाषा है। संस्कृत हमारी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली भाषा है। यह हमारी श्रद्धा एवम् आस्था की परमाश्रयरूपा तथा अध्यात्म की भाषा है। इसे देववाणी, गीर्वाणवाणी, सुरभारती, अमरभारती आदि विविध नामों से पुकार कर हम इसकी महनीयता और श्रद्धेयता को अङ्गीकार करते हैं। संस्कृत विश्वभाषा- जननी है और ज्ञान-विज्ञान-पालनकर्त्री है। संस्कृत प्राचीन भारत की जनभाषा थी और इसे उस काल की राष्ट्रभाषा भी कहा जाता है।

यद्यपि वर्तमानकाल में संस्कृत जनभाषा के रूप में उतनी व्यापक नहीं है तथापि पूरे भारत देश में आज भी परम्परागत रूप से उसका व्यवहार सतत हो रहा है। कुछ अपवादों को छोड़कर, इस समय यह विद्वानों की भाषा बनकर रह गयी है। विद्वान् इसमें अनेकविध शास्त्र, साहित्य की रचना कर रहे हैं और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कर रहे हैं। यह हिन्दी और अन्य भारतीय (प्रान्तीय) भाषाओं का पोषण करती है। इसकी सहायता के विना प्रान्तीय भाषायें फूल-फल नहीं सकतीं। संस्कृत भाषा का यह उत्कर्ष प्रायः ईसा की दसवीं शताब्दी तक बना रहा किन्तु भारत पर यवनों के आक्रमण के साथ ही इस भाषा का पराभव प्रारम्भ हो गया। प्राचीन भारत में जनभाषा होने का गौरव धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। 'भाषणाद् भाषा' अथवा 'भाष्यंतेऽनयेति भाषा' — यह व्युत्पत्ति इसकी जनभाषता को प्रमाणित करती है। महर्षि पाणिनि ने अपने 'अष्टाध्यायी' ग्रन्थ में संस्कृत को 'भाषा' की संज्ञा से ही सङ्केतित किया है। आचार्य भामह (७०० ई.) ने स्त्रियों और बच्चों द्वारा भी संस्कृत-भाषा में काव्य-रचना किये जाने का उल्लेख किया

है। महाकवि बिल्हण (१०६०ई.) ने कश्मीर देश की स्त्रियों द्वारा भी अपने देश की भाषा की अपेक्षा संस्कृत और प्राकृत भाषा के ही अधिक प्रयोग किए जाने का उल्लेख किया है। चीनी यात्री हुयेनत्सांग (७००ई.) के अनुसार, 'बौद्धमतावलम्बी संस्कृतभाषा में ही अपनी चर्चायें किया करते थे। इन सभी तथ्यों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि संस्कृत जनसामान्य की भाषा थी।

भारत का सांस्कृतिक इतिहास संस्कृत-भाषा का ही इतिहास है। वेद-वेदाङ्ग, उपनिषद्, आगम, स्मृति, पुराण, आयुर्वेद, दर्शन, विज्ञान, गणित, व्याकरण, अर्थशास्त्र, राजशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि नाना शास्त्र, नाटक, महाकाव्य, गद्य-चम्पू आख्यान-काव्यादि और कितने ही विषयों के ज्ञान-विज्ञान की सम्पत् से समृद्ध यह संस्कृत भाषा है।

यह देववाणी, सनातन वाणी, वेदवाणी, बादरायण, जैमिनि, कपिल, गौतमादि की दार्शनिक वाणी, ऋषियों, मुनियों की तपःसमाधि वाणी, पौराणिकों की साम्प्रदायिक वाणी, स्मृतिकारों की सामाजिकवाणी होने के साथ ही वाल्मिकि, व्यास, भास, कालिदास, अश्वघोष, शूद्रक, दण्डी, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, कल्हण, बिल्हणादि की काव्यवाणी; भास, कालिदास, भवभूति आदि की नाट्यवाणी; बाणभट्ट, सुबन्धु, दण्डी, क्षेमेन्द्रादि की गद्यवाणी; चरक, सुश्रुत, वाग्भटादि की वैद्यवाणी; वैदिक, जैन, बौद्ध, शैव, वीरशैव की दर्शनवाणी; वराहमिहिर, भास्कर, आर्यभटादि की ज्योतिश्शास्त्र वाणी, वास्तु-शिल्प-गज-अश्वशास्त्रादि की शास्त्रवाणी और इसी प्रकार की हजारों हजार वाणियों के रूप में विराजमान है यह संस्कृत-वाणी। आसेतु हिमालय पर्यन्त विदग्ध-मुखमण्डनकारिणी, सकल हित विधायिनी, लोक-परलोक-दायिनी है यह संस्कृत भाषा। संस्कृत वाङ्मय की विपुल ग्रन्थ राशि, वैदेशिक आक्रमणों, मतविरोधों एवं संघर्षों तथा जनता की उदासीनता और अज्ञता से कितनी नष्ट हुई और कितनी बची है, इसका लेखा-जोखा करना मुश्किल है। कल्हण ने राजतरङ्गिणी में इस विध्वंस का उल्लेख किया है—

सिकन्दरो धरानाथो यवनैः प्रेरितः पुरा ।
पुस्तकानि च सर्वाणि तृणान्यग्निरिवादहत ।।

अर्थात् (आक्रामक) राजा सिकन्दर ने यवनों की प्रेरणा से ग्रन्थों को वैसे ही जला डाला जैसे आग सूखी घास को जला डालती है।

प्राचीन भारत के इतिहास पर यथार्थ दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि बर्बर आक्रामकों ने इस देश के न जाने कितने ग्रन्थालयों को तहस-नहस कर डाला, जला डाला। इसके बावजूद अभी भी संस्कृत वाङ्मय विश्व के किसी भी भाषा-वाङ्मय से अधिक विशाल है।

वैदिक काल में संस्कृत सभी की एकमात्र भाषा थी। सबको इसके अध्ययन-अध्यापन का अधिकार था। परवर्ती स्मृतिकाल में समाज की चतुर्वर्ण व्यवस्था करके शूद्रों को इस अधिकार से वंचित कर दिया गया। हालांकि पुराणों से यह बात सिद्ध नहीं होती फिर भी संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन का अधिकार सीमित होने लगा और धीरे धीरे यह भाषा सामान्य जनता से दूर होने लगी। स्रोत के अवरुद्ध होने से जो दशा सतत प्रवाहशीलनदी की धारा की होती है वही दशा संस्कृत भाषा की होने लगी और इसका लाभ उठाकर विद्वेषियों ने इसे मृत भाषा कहना शुरू कर दिया। इसका व्यापक प्रभाव लोक पर पड़ा और धीरे-धीरे मूल से कट कर यह भाषा केवल प्रबुद्धवर्ग तक सीमित हो गयी फिर भी इसका व्यवहार विच्छिन्न न हुआ और इसमें नैकविध ग्रन्थों का प्रणयन निर्बाध रूप से होता रहा है। यही कारण है कि इस सनातन भाषा के प्रति भारतीयों के मन में गौरव तथा गर्व का भाव बना हुआ है।

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के पश्चात् पाश्चात्त्य विद्वान् विशेष रूप से इस भाषा के प्रति आकृष्ट हुए। उन्होंने संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन क्रमवार प्रारम्भ किया। अठारहवीं ईसवी में संस्कृत का गौरव सारी दुनियाँ में व्याप्त हो गया। हेगल, हेमिल्टन, ब्लूसर, कीथ, विल्सन, मैक्समूलर, बुचर, बेवर, मैक्डॉनेल आदि ब्रिटिश और जर्मन पण्डितों का इस दिशा में किया गया योगदान प्रशंसनीय है।

आज, भारत के अतिरिक्त विश्व के अनेक देशों में विश्वविद्यालयीय स्तर पर संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन उच्च स्तर पर हो रहा है। भारत में परम्परागत रूप से तथा पाश्चात्त्य विधि से संस्कृत का अध्ययन चल रहा है। अनेक संस्कृत विश्वविद्यालयों की भी स्थापना हुई है। संस्कृत अन्ताराष्ट्रिय स्तर पर विश्वभाषा बन रही है। सांस्कृतिक दृष्टि से संस्कृतभाषा की गरिमा और गुणवत्ता सर्वमान्य है।



अध्याय २

संस्कृत में वीरशैव साहित्य

वीरशैवों ने संस्कृत के माध्यम से भारतीय संस्कृति के लिए असीम और अनुपम योगदान किया है। संस्कृत में वीरशैव साहित्य को दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है —

१. संस्कृत भाषा में वीरशैव तत्त्व (तथा) २. संस्कृत में वीरशैव ग्रन्थ।

संस्कृत में वीरशैव साहित्य सुविस्तृत है। भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं — कन्नड़, तेलुगू, तमिल, हिन्दी, मराठी — के अतिरिक्त अंग्रेजी, जर्मन और रसियन भाषा में भी वीरशैव साहित्य उपलब्ध होता है। संस्कृत में वीरशैव साहित्य का अभिप्राय है वीरशैव तत्त्व सहित वीरशैव दार्शनिक, शिवयोगी और कवि लेखकों द्वारा विरचित विपुल ग्रन्थराशि।

वीरशैवधर्म भारतीय संस्कृति का एक परिष्कृत और सुव्यवस्थित धर्म है। इस धर्म में अतिवर्णाश्रम, एकदेवोपासना, ज्ञानक्रियासमुच्चय, वैदिक-तान्त्रिक-प्रक्रिया, स्त्रीमात्र को समाज में समानाधिकार, कायक का महत्त्व और दासोह प्रभृति महनीय तत्त्वों के समावेश से इस धर्म का गरिमामय स्वरूप और भी सामयिक महत्त्व को प्राप्त हो गया है। वीरशैव धर्म सदैव से भारतीय संस्कृति का अभिन्न अङ्ग रहा है। वेद-शास्त्र-पुराण-कामिकादि आगमों में वीरशैव तत्त्व स्पष्ट रूप से विद्यमान है —

वेदशास्त्रपुराणेषु कामिकाद्यागमेषु च ।
लिङ्गधारणमाख्यातं वीरशैवस्य निश्चयात् ।।

'सिद्धान्तशिखामणि' का यह वचन संस्कृत के साथ वीरशैव साहित्य के अतिप्राचीन काल से चले आ रहे सम्बन्ध का स्पष्ट रूप से आख्यान करता है।

वीरशैव साहित्य के लिए संस्कृत मूल आधार है। भारतीय धार्मिक परम्परा में इसका विशिष्ट स्थान अक्षुण्ण है। वीरशैवाचार्य, विरक्त, मठाधीश, दार्शनिक विद्वानों के अतिरिक्त अनेक राजाओं और मन्त्रियों ने भी संस्कृत भाषा में एतद्विषयक

प्रौढ़ साहित्य का प्रणयन करके वीरशैव धर्म की अप्रतिम सेवा की है और अपने जीवन को कृतार्थ किया है। इतना ही नहीं कन्नड़ में उपलब्ध वीरशैव के श्रेष्ठ धार्मिक ग्रन्थों का अनुवाद करके सम्पूर्ण जगत् के समक्ष उसे प्रस्तुत करने में अपने उदात्त दृष्टिकोण का परिचय दिया है। भारत देश के इतिहास का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि महात्मा गौतम बुद्ध के समय में संस्कृत के साथ चल रही देशी भाषा 'पालि' को राजभाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ था और बौद्धों के समानान्तर चल रहे जैनों ने भी प्राकृत को अपनाकर उसे भी गौरवशाली बनाया। कालानुरोधवशात् बौद्ध और जैन धर्म के कुछ ग्रन्थ विद्वानों द्वारा संस्कृत में अनूदित हुए और अश्वघोष प्रभृति आचार्य-कवियों ने बुद्धचरित-सौन्दरनन्द आदि महाकाव्यों की रचना संस्कृत में की। बौद्ध और जैन काल में भी साहित्य सर्जन अनवरत रूप से संस्कृत में होता रहा और संस्कृत राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचलित रही। संस्कृत में शास्त्रार्थ और ग्रन्थ रचना विद्वानों के लिए गौरव की बात थी। विद्वानों के माध्यम से संस्कृत ने पूरे भारतवर्ष को एक सूत्र में बाँध दिया। परस्पर वैचारिक आदान-प्रदान संस्कृत-भाषा के ही माध्यम से होता था। ज्ञान-विज्ञान का कोई भी सिद्धान्त अथवा उसका दर्शन जब संस्कृत भाषा के माध्यम से प्रतिपादित होकर विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत होता था तभी उसका आदर होता था और कृति तथा कृतिकार को सही अर्थों में मान्यता मिलती थी।

व्याकरण और दर्शन के सिद्धान्त तो संस्कृत में लिखे ही जाते थे, वैदिक वाङ्मय एवं अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के भाष्य तथा व्याख्यायें भी संस्कृत के ही माध्यम से लिखी गयीं। पाणिनि की अष्टाध्यायी पर पतञ्जलि द्वारा लिखा गया महाभाष्य, आदि शंकराचार्य द्वारा ब्रह्मसूत्र उपनिषदों और गीता (प्रस्थानत्रयी) पर किए गए भाष्य, रामायण, महाभारत पर की गयी टीकायें, वैदिक संहिताओं पर उव्वट, महीधर, सायण द्वारा किए गए भाष्य तथा लौकिक संस्कृत साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों पर मल्लिनाथ आदि के द्वारा की गयी संस्कृत टीकायें, संस्कृत के बृहद् वाङ्मय के राष्ट्रव्यापी (किं वा विश्वव्यापी) प्रचार के साधन बने। इसके कारण न केवल संस्कृत साहित्य प्रचारित हुआ अपितु मूलग्रन्थकारों के साथ ही वे भाष्यकार और व्याख्याकार भी विश्रुत हुए। इसके बाद वे संस्कृत ग्रन्थ तथा भाष्य प्रादेशिक भाषाओं में अनूदित होकर लोक में प्रथित हुए।

प्राचीन काल में शिक्षा का इतना प्रचार न था। यह उच्च वर्ग तक ही सीमित थी। इसीलिए लिखने-पढ़ने वाले लोग कम ही थे। संस्कृत भी सामान्य जनों की

भाषा न होकर शिष्टजनों की भाषा थी। संस्कृत के जितने भी दृश्यकाव्य हैं (रूपक — नाटकादि) उनमें सामान्य पुरुष और स्त्री प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं और राजा-मन्त्री-पुरोहित-आचार्य-सेनापति तथा विदुषीस्त्रियाँ ही संस्कृत का व्यवहार करती हैं। समय-समय पर हुए धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप जनता में शिक्षा के प्रति रुझान और साक्षारता बढ़ी। उत्तरभारत में वेद-विरोधी बौद्ध और जैन धर्मों के अभ्युत्थान से तमिलनाडु, कर्णाटक, महाराष्ट्र और बंगाल-उड़ीसा में प्रवर्तित भक्ति आन्दोलनों से शिक्षा के क्षेत्र में जनसामान्य की भागीदारी बढ़ने से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए।

भारत के प्राचीनतम धर्मों में से शैवधर्म भी एक है। वीरशैव उसकी एक महत्त्वपूर्ण शाखा है और यह भी उतनी ही प्राचीन है। संस्कृत वीरशैवधर्म के लिए मूलभाषा है। वीरशैव सिद्धान्त के चिन्तनशील दार्शनिकों और आचार्यों ने आगम-निगम के सिद्धान्तों को अपने लिए आधार-पीठिका बना ली। यद्यपि ये ग्रन्थ मुख्य रूप से वीरशैव धर्म का प्रतिपादन तो नहीं करते किन्तु वे वीरशैवधर्म के स्रोतग्रन्थ के रूप में अवश्य मान्य है। इन आगमिक और नैगमिक ग्रन्थों में वीरशैव सिद्धान्त के बीज निक्षिप्त हैं। प्राचीन काल में शैवप्रभेदों को भी शैव नाम से ही जानते थे। शैवधर्मी जनता प्राचीनकाल में भी अधिसंख्यक थी। जैसा कि कहा जा चुका है, वीरशैव, शैवधर्म से ही प्रादुर्भूत है अतः शैवधर्म का ग्रन्थ वीरशैव के लिए भी प्रामाणिक आधार ग्रन्थ है। प्राचीन शिवागम और पुराणों में इष्टलिङ्ग धारण आदि वीरशैव की विलक्षण विशेषतायें बताई गयी हैं।

वातुलागम में वीरशैव धर्म का अस्तित्व लिङ्गधारण के उल्लेख से प्रमाणित होता है। 'वीरशैव' शब्द भी उतना ही प्राचीन है जितना आगम शब्द। आगम बसवेश्वर से भी पूर्वकाल को प्रमाणित करता है।

वीरशैवधर्म अट्ठाईस शिवागमों को अपने लिए प्रमाण के रूप स्वीकार करता है। डॉ. जे. रुद्रप्पा द्वारा लिखित कर्नाटक की परम्परा(भाग-१) के अनुसार वैदिक साहित्य में भी वीरशैव शब्द का प्रयोग मिलता है। अतः इस धर्म की प्राचीनता के साथ ही संस्कृत वाङ्मय में इसकी उपलब्धता भी प्रमाणित होती है।

बसवादि प्रमथ द्वारा दिए गए प्रथम बोध और सुधार भी प्राचीन ग्रन्थों में विद्यमान हैं। शैव से वीरशैव के पृथक् होने के पश्चात् भी पूर्व निर्धारित ग्रन्थों का परित्याग नहीं किया गया। वीरशैव के शैशवकाल में भी शैवधर्म में प्रचलित कुछ कर्मविभागों से असहमति होने के बावजूद भी वेदों का निषेध नहीं किया गया

है। 'शिवदास-शिवाञ्जलि' नाम के अपने ग्रन्थ (पृ. २७) में विद्वान् लेखक डॉ. एल. बसवराजु ने लिखा है — "कुछ कर्मों के फलप्रद न होने का दावा वेदों के ही आधार पर करते हुए भी वेदों को अपनाये रखना वीरशैव धर्म की अपनी विशेषता हैं।"

शैवाचार्यों ने प्राचीनकाल से ही शैव और वीरशैव धर्म-सिद्धान्तों के प्रतिपादक दर्शनग्रन्थों की रचना संस्कृत में की है। तत्पश्चात् वीरशैवमताचार्य, शिवाचार्य, शिवयोगी, दार्शनिक महात्माओं ने अपने ग्रन्थों की रचना संस्कृत में ही की है।

वैष्णव मत के रामानुज मत में दो विभाजन हैं — तेंगलै और वडगलै। तेंगलै मतानुयायी अल्वार के तमिल प्रबन्ध को प्रमुखता प्रदान करते हैं और तमिल भाषी हैं। वडगलै मतानुयायी वेद-शास्त्रों को प्रमुखता देते हैं तथा संस्कृत का आश्रय ग्रहण करते हैं। एक मत वाले भक्ति और देशी भाषा को अपनाये हुए हैं तो दूसरे मतवाले वेदशास्त्र और संस्कृत (मार्गनुडी) को सर्वप्रमुख मानते हैं। इसी प्रकार माध्वमतावलम्बी दासकूट और व्यासकूट — इन दो सम्प्रदायों में विभक्त है। दासकूट मतानुयायी पुरन्दरदास जी के कीर्तन के प्रेमी और कन्नड़भाषी है किन्तु व्यासकूट सिद्धान्तावलम्बी संस्कृत के अभिमानी हैं। यही पद्धति वीरशैवधर्मानुयायियों में भी दृष्टिगोचर होती है।

वीरशैव धर्म में गुरुवर्ग और विरक्तवर्ग के दो मठ सम्प्रदाय हैं। गुरुवर्ग मठ सम्प्रदाय के आचार्य, शिवाचार्य और दार्शनिक वेद-आगम-उपनिषद् आदि प्रमाणों पर आधारित शैवसिद्धान्त को प्रमुखता देते हैं तथा संस्कृताभिमानी हैं। विरक्तवर्ग मठ सम्प्रदाय से सम्बद्ध भक्तजन बसवादि प्रमथों के उपदेश वचनों में श्रद्धा रखते हैं और प्रमाण मानते हैं तथा देशी भाषा कन्नड़ को प्राथमिकता देते हैं। गुरुवर्ग के रेणुकादि पञ्चाचार्य इस धर्म के मूलपुरुष समझे जाते हैं किन्तु विरक्तवर्ग के भक्तजन बसवादि प्रमथ को इस धर्म का मूलपुरुष मानते हैं। अपवाद रूप में विरक्तवर्ग मठसम्प्रदाय के महापण्डित श्रीमरितोण्डार्यजी पदवाक्यप्रमाण हैं। इन्होंने 'वीरशैव-आनन्द चन्द्रिका' और 'कैवल्यसार' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना संस्कृतभाषा में की है। इसके साथ ही, 'सिद्धान्तशिखामणि' पर 'तत्त्वदीपिका' नामक प्रबन्ध निर्मित कर विश्व में वीरशैव धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अपना बहुमूल्य योगदान किया है।



अध्याय ३

वीरशैव धर्म और संस्कृत के मध्य अविनाभाव सम्बन्ध

यह असन्दिग्ध तथ्य है कि वीरशैवसिद्धान्त का मूल आधार वेद, आगम और पुराण ही हैं। इन्हीं के उत्स से वीरशैव धर्म के प्रतिपादक दार्शनिक ग्रन्थों की रचना हुई है। इसी प्रकार शरणों के वचनों के लिए भी वेद ही आधारभूत हैं। श्री गुब्बि मल्लणार्य जी ने अपने 'गणभाषितरत्नमाला' में ३८ शरणों के वचनों के लिए संस्कृत के ५३ ग्रन्थों के श्लोकों को आधार माना है। 'शिवतत्त्व-चिन्तामणि' और 'गणभाषितरत्नमाला' में अनेक संस्कृत ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है। ये सभी वीरशैवधर्म के तत्त्वों का प्रतिपादन करने के लिए आधारभूत ग्रन्थ हैं। वीरशैव विचारधारा के तत्त्वों का प्रतिपादन करने के लिए हमें संस्कृत ग्रन्थों का विपुल भाण्डार प्राप्त होता है। १. ज्योतिर्नाथ के 'शैवरत्नाकर', २. जगदाराध्य नागेशगुरुजी के 'शिवज्ञानसमुच्चय', ३. पालकुरी के सोमनाथ के 'बसवराजीय', ४. केरेय पद्मरस के 'सावंदचरित', ५. मल्लणाचार्य के 'श्रीशैवज्ञानप्रदीपिका', ६. 'वीरशैवशिखारत्न', ७. 'शैवामृत पुराण', ८. 'दशाङ्गसृष्ट्युद्धरणवाक्यग्रन्थ', ९. 'अनादि वीरशैवाचार सङ्ग्रह', १०. 'कात्यायनसूत्रदिव्यागम', ११. 'वातुलागम', १२. 'वातुलोत्तर', १३. 'जाबालशाखा', १४. 'तत्त्वसार', १५. 'पद्मनाभ', १६. 'ब्रह्मगीत', १७. 'भीमागम', १८. 'महिम्नस्तोत्र', १९. 'रुद्रभाष्य', २०. 'सिद्धान्तशेखर', २१. 'सोमशम्भु', २२. 'वीरतन्त्र' अथवा 'वीरागम', २३. 'कामिकागम', २४. 'कालिकागम', २५.'आदित्यपुराण', २६. 'ब्रह्माण्डपुराण', २७. 'लिङ्गपुराण', २८. 'स्कन्दपुराण', (क. शङ्करसंहिता, ख. कालिकाखण्ड, ग. शिवरहस्य खण्ड), २९. 'शिवधर्म', ३०. 'शिवधर्मोत्तर', ३१. 'शिवपुराण' (वायवीय संहिता-धर्मसंहिता-रुद्रकोटि संहिता) ३२. 'वाराहपुराण', ३३. 'वाराहोत्तरपुराण', ३४. 'वशिष्ठ पुराण', ३५. 'विष्णुपुराण'', ३६. 'कूर्मपुराण', ३७. 'गरुडपुराण', ३८. 'भागवतपुराण', ३९. 'मत्स्यपुराण', ४०. 'मानवपुराण', ४१. 'पराशर पुराण', ४२. 'भास्कर संहिता', ४३. 'वीरभद्रपुराण', ४४. 'सूतसंहिता', ४५. 'शाम्भवपुराण', ४६. 'सौरसंहिता', ४७. 'ज्ञानवैभवखण्ड',

४८. 'यज्ञवैभवखण्ड', ४९. 'देवीकालोत्तर', ५० 'श्रीरुद्रदेव', ५१. 'पुरुषसूक्त', ५२. 'शिवसंकल्पोपनिषद्', ५३. 'कैवल्योपनिषद्', ५४. 'श्वेताश्वतरोपनिषद् के अतिरिक्त चारों वेदों में रुद्रसूक्त के मन्त्रों पर वीरशैव तत्त्व निरूपक भाष्य भी वीरशैवधर्म का प्रतिपादन करते हैं। उपर्युक्त सभी ग्रन्थों का उल्लेख 'शिवतत्त्वचिन्तामणि' और 'गणभाषितरत्नमाला' में उपलब्ध है।

कन्नड़ के सभी वचनकारों के लिए श्रुति, आगम, पुराण ही आधार ग्रन्थ हैं। वीरमाहेश्वराचार संग्रह, शिवतत्त्वचिन्तामणि, गणभाषितरत्नमाला, शिवतत्त्वरत्नाकार आदि में उल्लिखित एवं प्रस्तुत संस्कृत ग्रन्थों में कुछ का अनुमान १२वीं सदी ई. पूर्व का होने का है। गणभाषितरत्नमाला में उल्लिखित बसवण्ण तथा उनके समकालिक शरणों के वचनों में उल्लिखित अधोलिखित ग्रन्थ तो निश्चय ही १२वीं शताब्दी के पूर्व विद्यमान वीरशैव धर्म के लिए प्रमाणभूत हैं —

१. वातुलागम २. वातुलोत्तर ३. जाबालशाखा ४. भीमागम ५. महिम्नस्तोत्र ६. वीरागम ७. कामिकागम ८. कालिकागम ९. आदित्यपुराण १०. लिङ्गपुराण ११. ब्रह्माण्डपुराण १२. शिवधर्म १३. शिवधर्मोत्तर १४. शिवपुराण (वायवीय संहिता) १५. स्कन्दपुराण (शङ्कर संहिता-शिवरहस्य काण्ड) १६. विष्णुपुराण १७. कूर्मपुराण १८. गरुडपुराण १९. वसिष्ठपुराण २०. पराशरपुराण २१. मानवपुराण २२. सूतसंहिता २३. शिवसङ्कल्पोनिषद् २४. पुरुषसूक्त २५. ज्ञानवैभवखण्ड २६. यज्ञवैभवखण्ड और २७. श्रीरुद्र देव।

इन सभी ग्रन्थों को पाँच वर्गों में रखा जा सकता है —

१. आगम २. पुराण ३. उपनिषद् ४. वेद और ५. अन्य धार्मिक ग्रन्थ।

आगम १. कामिक २. योगज ३. चिन्त्य ४. कारण ५. अजित ६. दीप्ति ७. सूक्ष्म ८. सहस्र ९. अंशुमत् १०. सुप्रबोध ११. विजय १२. विश्वास १३. स्वायम्भुव १४. अनल १५. वीर १६. कौरव १७. मुकुट १८. विमल १९. चन्द्रज्ञान २०. बिम्ब २१ प्रोद्गीत २२. ललित २३. सिद्ध २४. शान्त २५. सर्वोत्तर २६. पारमेश्वर २७. किरण और २८. वातुल। ये अट्ठाईस ग्रन्थ 'आगम' के अन्तर्गत परिगणित हैं। इनमें से प्रथम दस आगमों को शिवागम और शेष अट्ठारह को रुद्रागम के नाम से जाना जाता है।

पुराण १. स्कन्द २. शैव ३. लैंग्य ४. कूर्म ५.वामन ६. वराह ७. भविष्यत् ८. मार्कण्डेय ९. ब्रह्माण्ड १०. मत्स्य ११. भागवत १२. वैष्णव १३. गारुड १४. पद्म १५. नारदीय १६. आग्नेय १७. ब्रह्म और १८. ब्रह्मवैवर्त।

इन पुराणों का त्रिधा विभाजन — ब्राह्म, वैष्णव और शैव - किया जा सकता है। इन पुराणों में शैव-वीरशैव दोनों से सम्बद्ध तत्त्वों को अनेकत्र (आकाश में तारों की तरह) चमकता हुआ देखा जा सकता है। इनमें शैव-वीरशैव धर्म के लिए समान रूप से शिवपारम्य, विभूति, रुद्राक्ष, मन्त्र, गुरु, स्थावर-जंगम-इष्टलिङ्ग विचार स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। तदनुसार, वीरशैव धर्म के अनुयायी वीरशैव का प्रतिपादन करने के लिए अपने इच्छित तत्त्वों का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार, हम आगम और पुराण ग्रन्थों में वीरशैव तत्त्वों का प्रतिपादन संक्षेपतः देख सकते हैं। उदाहरण के लिए, मानव-स्कन्द-गरुड-कूर्म-विष्णु पुराणों में सूतसंहिता में ऊर्ध्व-पुण्ड्र आदि का खण्डन करके शैवधर्म की ओर ले जाने वाली बातें मिलती हैं।[१] भीमागम और सोमशम्भु ग्रन्थों में विप्र अथवा द्विजों को निर्दिष्ट कर दीक्षा-लिङ्ग-पूजा आदि का वर्णन किया गया है।[२] वीरागम और शिवधर्म ग्रन्थों के अनुसार लिङ्गधारक भक्त ही श्रोत्रिय है। जो राजा अथवा द्विज लिङ्गधारक नहीं है, उसकी सेवा लिङ्गधारक के द्वारा करना पापकर्म माना गया है।[३] वातुलतंत्र में भी लिङ्गदीक्षाविधि का निरूपण है।[४] वीरागम में प्राणलिङ्गी के प्रस्ताव और प्रसादादि स्थल का उल्लेख है।[५] शिवरहस्य में भक्ति-महेश्वर-प्रसाद-प्राणलिङ्गी-शरण-एक्य — ऐसे षट्स्थल प्रक्रिया और उनका वर्णन दृष्टिगोचर होता है।[६] शिव-रहस्य और सूतसंहिता में लिङ्गाङ्ग संयोग नामक वीरशैव प्रस्ताव भी है।[७]

---

१. ग. भा. र. माला, पृ. १३४-१४२
२. वही, पृ. १४३
३. वही, पृ. १५३
४. वही, पृ. १८२-१८४
५. वही, पृ. २७६-३२८
६. वही, पृ. ३५८-३५९
७. वही, पृ. ३९१

गुब्बी मल्लणार्य द्वारा उल्लिखित उरिलिंग पेद्दिय वचन - भाग एक में - वातुल, उत्तर वातुल, वाशिष्ठ, ब्रह्माण्ड-शिवधर्म, स्कन्द, शिवधर्मोत्तर कूर्म, शिवरहस्य, लैंग्य (शंकरसंहिता), वीरागम, कालिका खण्ड और ज्ञान-वैभव खण्डों का उल्लेख मिलता है।[८]

लैंग्यपुराण के एक कथन को चन्नबसवण्ण ने अपने एक वचन में उल्लिखित किया है। इस वचन के आधार पर षट्स्थल की चर्चा लिङ्गपुराण में ही आ चुकी है। वीरागम, शिवरहस्य-कालिकाखण्ड में 'जङ्गम' शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त होकर आया है।[९] शिवधर्म ग्रन्थ में इष्टलिंग उपासना भी स्थावरलिङ्ग पूजा के विषय में आयी है।[१०] वीरागम में जङ्गमपूजा को स्थावरपूजा से पवित्र माना गया है।[११]

शिवरहस्य में दासोहतत्त्व[१२], शङ्कर संहिता में[१३] जङ्गम पादोदक और उच्छिष्ट प्रसादों को मोक्ष प्राप्त करने के लिए पीने का सम्प्रदाय बसवादि प्रमुखों द्वारा प्रवर्तित किया जा चुका था। जङ्गम पादोदक से लिङ्ग का अभिषेक करके उस जङ्गम प्रसाद को अर्पित किए जाने का अभिमत गुब्बि मल्लणार्य अपने व्याख्यान में उल्लिखित कर चुके हैं।[१४]

इन उदाहरणों को और भी अधिक विस्तार से निरूपित किया जा सकता है किन्तु इस प्रसङ्ग में अभी इतना ही पर्याप्त है। इन उदाहरणों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि आगमों और पुराणों में वीरशैव तत्त्वों का सन्निवेश था। इस प्रकार बसवादि प्रथमों से पूर्व ही इस धर्म के तत्त्व संस्कृत वाङ्मय में सुव्यवस्थित हो चुके थे — यह स्पष्ट ही विदित होता है।

---

८. ग. भा. र. माला, पृ. २२२-२२५

९. वही, पृ. ३१०

१०. वही, पृ. २९०

११. वही, पृ. ३०५

१२. वही, पृ. ३१६

१३. वही, पृ. २५०

१४. वही, पृ. ३१०

शिवागम, वीरशैवों के लिए आधार ग्रन्थ तो पहले ही बन चुके थे। पारायण एवं प्रवचन के लिए पवित्र ग्रन्थ भी बन चुके थे।

'आराध्यचारित्र्य' के लेखक नीलकण्ठाचार्य (१४८५ई.) ने अपने गुरु गङ्गाधराचार्य के बारे में लिखा है कि वे अपने भक्तगणों को शैवागमों के विषय में सारबोध देते थे।[१५] गुब्बि मल्लणार्य के अनुसार, वीरशैवामृत पुराण के आधार पर पुष्ट होता है कि वातुलागम पर कन्नड़ में टिप्पणी लिखी गयी। कल्याणस्वामी (१५००ई.) ने शैवागमों में से एक 'कारणागम' का विषय संग्रह करके 'कारणागम का वार्धक' शीर्षक से २५ षट्पदियों की रचना की।[१६] इसी प्रकार नीलकण्ठ नागनाथाचार्य के वीरमाहेश्वराचार्य के संग्रह की कन्नड़ टीका लिखते हुए श्रीधराङ्क (१५५०ई.) ने 'षट्स्थल ब्रह्मी वीरशैव सुधार्णवपूर्णचन्द्र' नामक अपनी टिप्पणी के लिए प्रेरक प्रशंसा की है।[१७] जिन शिवागमों में कुछ षट्स्थल तत्त्व ही प्रतिपादित होते थे — ऐसे आगमों को उन्होंने वीरशैवागम नाम दिया था। संगनबसवेश्वर (१६००ई.) ने'रथोद्धारणे वाच्य' नामक ग्रन्थ को 'श्रुतिस्मृत्युपनिदागमवचनार्थंगलिं' कहते हुए अपने से पूर्व में जक्कणार्य, मायिदेवप्रभु, केरेय पद्मरस, गुब्बि के. मल्लणार्य, पाल्कुरिकेय सोम, सोमशम्भु आदि के द्वारा आगमों का संग्रह किये जाने का उल्लेख किया है।[१८] इस तरह वीरशैव दार्शनिक, विद्वान् और कवियों के द्वारा सिद्धान्तग्रन्थों की रचना के लिए संस्कृत शैवागमों का सङ्कलन किया जाता स्पष्टतः प्रमाणित होता है।[१९] सम्पादना के. पर्वतेश्वर द्वारा विरचित 'चतुराचार्य पुराण' में वेद-उप-निषद्-कामिक-वीर-वातुल-पारमेश्वर-लिङ्गपुराण-शिवपुराण-पद्मोत्तर-स्कन्दपुराण आदि से वस्तुविषय संकलित हैं।[२०]

शैवागम पुराण ग्रन्थों के अतिरिक्त शिव के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य में काव्य, स्तोत्र, नाटकादि की भी प्रचुर रचना हुई है। ऐसे रचनाकार वीरशैवों के लिए गौरवास्पद हैं।

---

१५. कर्नाटक कविचरिते, भाग-२, पृ. ९७

१६. वही, पृ. १७२

१७. वही, पृ. २५९

१८. वही, पृ. ३२६

१९. वही, पृ. ३२६

२०. वही, पृ. ५२२

कालिदास प्रभृति कतिपय महाकवि कश्मीर के प्रत्यभिज्ञा नामक शैवदर्शन, कुछ लकुलीश पाशुपत और कुछ कालामुख पाशुपत पंथ के अनुयायी रह चुके हैं। अतः इनके द्वारा विरचित साहित्यिक कृतियाँ यदि वीरशैवों के लिए प्रिय और पूज्य हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।[२१]

इस प्रकार हजारों वर्षों से वीरशैवधर्म का प्रतिपादन संस्कृत साहित्य में प्रतिपादित होता चला आ रहा है। क्षेत्रीय एवं सार्वभौम प्रचार की दृष्टि से वीरशैवाचार्य, दार्शनिक, शिवयोगी, विद्वान् और कविगण समय-समय पर विद्वन्मणियों के द्वारा मान्य इस प्राचीन राष्ट्रभाषा संस्कृत में रचना करते आए हैं। संस्कृत और वीरशैवधर्म का देह-प्राण सम्बन्ध अति प्राचीन काल से ही रहा है — यह अनेकशः प्रमाणित है।



२१. डॉ. एल. बसवराजु : शिवदास गीताञ्जलि, पृ. ४०

अध्याय ४

वीरशैव की प्राचीनता

अट्ठाईस शिवागमों में उत्तम धर्म शिवधर्म शास्त्र ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुआ। आगमों में क्रिया-चर्या-योग-ज्ञान-पाद हैं। जैसे वेदों में कर्मकाण्ड और ज्ञान-काण्ड-दो विभाग हैं वैसे ही आगमों में भी क्रियाचर्या पादात्मक पूर्वभाग और योग-ज्ञान पादात्मक उत्तरभाग — ये दो विभाग हैं। आगमों में, शैव षड्दर्शन, शैवपाशुपत, कालामुख, महाव्रत, संन्यास, कापालिक आदि पूर्वभाग, उत्तरभाग के लिए अर्थात् शैवदर्शन रूपी वीरमाहेश्वर अथवा वीरशैव दर्शन के लिए आकर (भाण्डार स्रोत) बन जाता हैं। आगमों के उत्तरार्ध भागों को शिवधर्मोत्तर-सिद्धान्त-षट्स्थल-दर्शन-महापशुपत, आदि नामों से जाना जाता है। शैव में अनादि-आदि-महा अनु-अवान्तर और प्रवर नामक विभाग हैं। इसके साथ ही शैव में वाम, दक्षिण, मिश्र सिद्धान्त प्रभेद तथा सामान्य, मिश्र, शुद्ध तथा वीरशैव नामक चार प्रभेदों के होने के विषय में निजगुण शिवयोगीजी अपना अभिप्राय प्रकट कर चुके हैं।[२२]

षट्स्थल में प्रथम तीन स्थल कर्मप्रधान एवं द्वैतभाव के हैं तथा अन्तिम तीन स्थल ज्ञान-प्रधान होकर अद्वैतभाव से युक्त हैं। इस वीरमाहेश्वर धर्मतन्त्र को वेदोभय प्रीतिमय मार्ग माना गया है।[२३] निजगुणशिवयोगी-लिखित 'विश्वकोष' नाम से प्रसिद्ध 'विवेकचिन्तामणि' में वीरशैव षट्स्थल ब्रह्मियों को अप्राकृत, प्रमथ, वीरशैव, वीरमाहेश्वर, लिङ्गी, अतिवर्णाश्रमी, ब्राह्मण, शिवयोगी, शिवभक्त, चरमशरीरी, सर्वोत्तमव्रती, शिरोव्रती, अप्रतिहतशिवव्रती, शिवाक्रमी, लोकपावन, सदाशुचि, लिङ्गाङ्गी, आगमिक, लिङ्गभोगोप, शिवाचार्य, भूरुद्र, जङ्गमलिङ्गी, असङ्ख्यात, गणङ्क, महाव्रती, महापाशुपत, लिङ्गायत, शिवभागवत इत्यादि संज्ञाओं से संकेतित किया गया है।

---

२२. वीरशैवानन्दचन्द्रिका, पृ. ७७-७८

२३. विवेक चिन्तामणि, प्रकरण ३, पृ. १५६

वेदागमों के रहस्यों को प्रतिपादित करने वाले पुराण-इतिहास में भी विद्यमान होने के कारण यह सिद्धान्त वेदागम काल से ही चला आ रहा है। शैव संस्कृति अतिप्राचीन है। वैदिक षड्दर्शनकारों में शैव भी हैं। हरिभद्रसूरिकृत 'षड्दर्शनसमुच्चय' के अनुसार, आगम के क्रिया-चर्या-पाद से सभी सामान्य-मिश्र-शुद्ध शैव तथा योग-ज्ञान-पाद से वीरशैव विशेषरूप से अन्वर्थ होते हैं। शैव और वीरशैव में कुछ समानता और कुछ असमानता परिलक्षित होती है।

वीरशैव का उद्गम वेदागम से ही होने के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण मिलते हैं।[२४] यथा —

नानावेदेषु शास्त्रेषु वेदान्तेषु बहुष्वपि ।
आगमेषु च शाखासु पुराणेष्वखिलेषु च ।।[२५]
— इत्यागमेषु सर्वेषु वेदान्तोपनिषत्सु च ।[२६]

श्रीगुरु-मुख से उपदेश प्राप्त कर वीरशैव वेदपुराणों द्वारा प्रदर्शित सन्मार्ग पर चलता हुआ षट्स्थल के माध्यम से सर्वोत्कृष्टता प्राप्त करने में सदैव सफल रहेगा। प्राचीन संस्कृत वाङ्मय के अनेक उल्लेखों और शिवशरणों द्वारा उल्लिखित वेदागमों के विपुल प्रमाणों से भी सिद्ध होता है कि वीरशैव साहित्य भी उतना ही प्राचीन है जितना कि वेदागम प्राचीन हैं। अति प्राचीन काल से ही वीरशैवाचार्य, शिवयोगी और शिवाचार्यों द्वारा प्रचलित और प्रचारित होकर यह धर्म-सम्प्रदाय क्रमशः सुपुष्ट मान्यता प्राप्त कर चुका है।

जिस प्रकार ए. ओ. ह्यूम द्वारा स्थापित कांग्रेस पहले तत्त्वचिन्तकों तक ही सीमित रही किन्तु बाद में गान्धी जी के जमाने में जन-जन तक फैलाकर अखिल भारतीय और राष्ट्रिय हो गयी, उसी प्रकार वीरशैव धर्म शिवागम काल में भी असंख्य अनुयायियों को पाकर बारहवीं शताब्दी में बसवयुग में पुनरुज्जीवन पाकर कन्नड भाषा के माध्यम से कर्नाटक प्रदेश में विस्तार से फैल गया। इस उदात्त धर्म से सम्मोहित होकर केरल, द्रविड, आन्ध्र, कर्नाटक और महाराष्ट्र के भक्तजन

---

२४. श्रीवेदागम वीरशैवसरणि, परि. २१, श्लोक ५६

२५. बसवराजीयम्, प्रकरण १

२६. शैवरत्नाकर, अध्याय १, पृ. ८-९

वीरशैव के प्रचार-प्रसार में संस्कृत भाषा के माध्यम से लग गए। वीरशैव सिद्धान्त भी द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शक्तिविशिष्टाद्वैत, शिवाद्वैत, विशुद्धाद्वैत जैसे प्रभागों में जाना जाता है।

भारतीय धार्मिक इतिहास में वीरशैव धर्म की पहचान हम प्राचीन काल में उसके लिए प्रचलित पर्यायशब्दों का अनुसन्धान करके कर सकते हैं। वेदों का कर्मकाण्ड उत्तर भारत में और ज्ञानकाण्ड दक्षिण भारत में खूब प्रचलित रहा। आगमों के भी दो चरण कश्मीर, नेपाल, आन्ध्र और द्राविड प्रदेशों में तथा उत्तरार्ध के दो चरण कर्नाटक, आन्ध्र और महाराष्ट्र में विशेष रूप से प्रचलित और प्रभावी रहे।



अध्याय ५

मूल वीरशैव वाङ्मय

यह विषय विवादास्पद है और इस पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वान् संस्कृत वाङ्मय को इस धर्म का मूल मानते हैं तो कुछ विद्वान कन्नड वाङ्मय को। वेदागम-पुराणों को प्रमाण मानकर अनेक वीरशैव-रचनाकारों ने भाष्यों और सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना की है। स्वतन्त्ररूप से रचित वेदागम-पुराणों को छोड़कर वीरशैव धर्म का मुख्य केन्द्र बिन्दु षट्स्थल-मूल वाङ्मय ही है। अनेक लोगों की यह भ्रान्त धारणा है कि बारहवीं शताब्दी ई. में वचनकारों द्वारा कन्नड में विरचित वचनधर्म ही मूल वीरशैवधर्म है तथा वचनवाङ्मय ही वीरशैवधर्म का मूल केन्द्र है। किन्तु विवेकदृष्टि से अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि संस्कृत-वाङ्मय – ग्रन्थ, वचन, शास्त्र – ही लिङ्गधारण, षट्स्थल वीरशैव सिद्धान्त को पूर्ण रूप से हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। यहाँ शरणों द्वारा रचित वचनों का उल्लेख किया जा सकता है। ध्यातव्य है कि अनेक प्रसिद्ध संस्कृत सिद्धान्त ग्रन्थों में कहीं भी वचनों एवं वचनकारों उल्लेख नहीं प्राप्त होता। यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि जिन संस्कृत ग्रन्थकारों को वचनशास्त्र का परिचय ही नहीं है तो उन्हें वीरशैवधर्म सिद्धान्त कहाँ से प्राप्त हुए? इसका समाधान किया जा सकता है कि 'विवेकचिन्तामणि', 'षट्स्थलतिलक', 'वीरशैवामृतपुराण' आदि के रचनाकारों ने वेदागमों के आधार पर ही अपनी रचनायें की है न कि वचनशास्त्र के आधार पर; जबकि उन्होंने संस्कृत के साथ-साथ कन्नड़ में भी सिद्धान्तग्रन्थों की रचना की है।

वस्तुतः वीरशैव वाङ्मय का मूल संस्कृत ही है। वीरशैव वाङ्मय का उद्गम संस्कृतवाङ्मय से ही हुआ है — इस विषय में विपुल प्रमाण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इनमें से कुछ प्रमाण अधोलिखित हैं —

१. "वेद-वेदाङ्ग-मत-पुराणों में सार-रूपी रहस्यार्थ प्रतिपादित वीरशैवमार्ग से लिङ्गाङ्ग संगी षट्स्थल ज्ञानियों को विना कोई देरी के शिवैक्य प्राप्त होगा।।"[२७]

२. कूडल चन्न संगमदेव के अनुसार, श्री गुरु द्वारा सकल आगमों के हृदय को जानकर उपदेश देने की रीति वीरतन्त्र है —

'ब्राह्मणं त्रीणि वर्षाणि क्षत्रियं वर्षषट्सु च ।
वैश्यन्तु नव वर्षाणि शूद्रो द्वादशवर्षकः ।।

३. ममताया निराशस्य लिङ्गनिष्ठा विदेश्यता ।
शासनाच्छास्त्रमित्युक्तो वीरशैवो महागमः ।।[२८]

४. अलोकशैवतन्त्राणि कामिकादीनि सादरम् ।
वातुलान्तानि शैवानि पुराणस्य खिलानि तु ।।[२९]

५. सिद्धान्ताख्यमहातन्त्रकामिकाद्यैः शिवोदिते ।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम् ।।[३०]

६. सकलश्रुत्यागमपुराणप्रसिद्धाष्टावरणपञ्चाचारविशिष्टतया........'।[३१]

७. 'वीरतन्त्रोदिताचारसम्पन्नं सर्वोपनिषत्प्रतिपाद्यज्ञानगोचरं कैवल्य-सारमारभ्यते।।[३२]

८. 'निखिलनिगमागमेतिहासस्मृतिपुराणपदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणेन ...'[३३]

९. 'इति वेदवेदान्तशिवागमस्मृतिपुराणेतिहासशास्त्रपुरातनोचितसारभूतवीर-माहेश्वरसारोद्धरम्----'।[३४]

---

२७. विवेकचिन्तामणिः, पृ. १

२८. एकोत्तरशतस्तलम्

२९. सिद्धान्तशिखामणिः, पृ. १

३०. वही, पृ. ५

३१. वीरशैवोत्कर्ष प्रदीपिका, श्लोक ७

३२. कैवल्यसारः, प्रारम्भ श्लोक

३३. वीरशैवानन्दचन्द्रिका

३४. शैवचिन्तामणिः

१०. 'सकलवेदागमपुराणशास्त्रशिवरहस्यादिषु सारग्रन्थानादाय------अयमनादि-वीरशैवषट्स्थलज्ञानसार: सप्तविंशतिस्थलै: सह।'[३५]

११. 'श्रुतिस्मृतिशिवागमान् इतिहासपुराणानि आलोक्येति प्रयत्नत: ------'।[३६]

१२. 'नुतिय चमत्कृति में श्रुतिशास्त्रागमपुराणरहस्यादिओं के भीतर ------'।[३७]

१३. श्रुतिस्मृतीतिहासश्च शिवधर्मादिशास्त्रक:।
कथ्यते शिवसिद्धान्त: तन्त्रं षट्स्थलनिर्णय:।।'[३८]

१४. 'सर्वेषामागमानां समुदयै: संगृहीतै: ---- क्रियासारनाम्ना।'[३९]

१५. 'नानावेदेषु वेदान्तेषु बहुष्वप्यागमेषु च शाखासु पुराणेष्वखिलेषु च।'[४०]

१६. 'सकलश्रुतिस्मृतीतिहासागमपुराणोक्तप्रकारेण-----श्लोकै: सारमुद्धृत्य-----।'[४१]

१७. 'शिवागमरहस्यार्थान् सिद्धसिद्धान्तपद्धतिम् ।'[४२]

१८. 'वेदवेदान्तागमश्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासपुरातनगीतानि------।'[४३]

उपर्युक्त कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वीरशैव धर्म का सम्बन्ध वेदागमों के साथ है। अत: उसका मूल संस्कृत वाङ्मय ही है। जिस तरह वीरशैव सिद्धान्त के लिए संस्कृतग्रन्थकारों ने वेदागम को आधार बनाया उसी तरह वचनकारों ने भी वेदागम को ही आधार बनाया। यहाँ हम कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

---

३५. अनादिवीरशैवसारसंग्रह:, भाग-१, पृ. १३

३६. वीरमाहेश्वराचारसंग्रह:, भाग-१

३७. दीक्षाबोध:

३८. अनुभवसूत्रम्, प्रथमाधिकारणम्, पृ. ४

३९. क्रियासार:

४०. सोमनाथभाष्यम्

४१. शैवरत्नाकर, पृ. ८

४२. शिवयोगप्रदीपिका, श्लोक ५८

४३. परमार्थप्रकाशिका

(क) दण्डक्षीरधरो गत्वा जङ्गमो भक्तमन्दिरम् ।
भक्तितुष्टः पयो दद्यादपहासाच्च दण्डनम् ।। (गरुडपुराण)

अर्थात्, 'बांयें हाथ में दूध का कटोरा, दायें हाथ में विभूति का गट्टा।
तब आया मारकर हमें दूध पिलाने वाला पिता ।।'

ऐसे कूडलसंगम देवय्या ही भक्तिपक्ष दर्शाने वाला पिता है।

(ख) जाति में शूद्र हो तो क्या? मन में महादेव को याद करने वाला ही वीरशैव है। बिल्कुल वैसे ही जैसे कि —

काञ्चनं रजतं ताम्रं रसयोगात्सुवर्णताम् ।
शिवज्ञानरसादेवं शूद्रोऽपि शिवतां ब्रजेत् ।।[४४]

(ग) वीरशैव सम्मत ब्रह्माद्वैत में परवश होकर बाह्योपचारंगल रहकर अपने आपको दूर रखते हुए अखण्ड दिखते हैं। वही एक साक्षी, वही हृत्स्थपीठ निजेष्टलिङ्ग। अन्तरमन में तल्लीन रहते हुए, बाह्य संकुल में निस्पृह निःस्वार्थ भाव से आचरण करने वाला ही सच्चा वीरशैव है।[४५]

ऐसे ही अनेक वचनों में वेदागमपुराणों के उल्लेख हम देख सकते हैं। भारतीय संस्कृति की जीवनधारा संस्कृत (वाङ्मय) ही है। उसका मूल भारतीय संस्कृति में समाया हुआ है। पुरा वैदिक काल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त उसका वैशद्य चतुर्दिक उल्लसित है। वीरशैव विषयक संस्कृत साहित्य अपने वैशिष्ट्य के साथ भारतीय संस्कृति में समाहित है। वेद-शास्त्र-पुराण-कामिकागम रूप जो संस्कृत साहित्य सर्वत्र छाया हुआ है उसमें वीरशैवधर्म के तत्त्व सन्निविष्ट है। कहा भी गया है—

वेदशास्त्रपुराणेषु कामिकाद्यागमेषु च ।
लिङ्गधारणमाख्यातं वीरशैवस्य दर्शनात् ।।[४६]

लिङ्गधारण वीरशैवधर्म का मुख्य लक्षण है। लिङ्गधारण का उल्लेख वेदागम शास्त्रों में उल्लिखित है। शिवागम में वीरशैवदर्शन का सविस्तर निरूपण प्राप्त

४४. सचिएनय्य कपिलसिद्ध मल्लिकार्जुन लिंगवे (सिद्धराम)

४५. चन्नबसवण्ण

४६. सिद्धान्तशिखामणिः, पृ. ५

होता है। इस प्रकार अतिप्राचीन काल से ही संस्कृत और वीरशैवसाहित्य का अविनाभाव सम्बन्ध, शब्द के साथ अर्थ अथवा पुष्प के साथ सुगन्ध की तरह प्रमाणित है।

सम्प्रति आगमपुराणादि में उल्लिखित वीरशैव तत्त्व के विचार लिङ्गधारण-षट्स्थल आदि हैं। हमारी लापरवाही और प्राचीन ग्रन्थों के हस्तलिखित मातृकाओं में की गयी छेड़छाड़ (अवाञ्छित परिवर्तनों) के कारण इन तत्त्वों की मौलिकता लुप्तप्राय है। उदाहरणार्थ — लिङ्गपुराण के (उत्तरभाग) इक्कीसवें अध्याय में उल्लिखित लिङ्गधारण तत्त्व दक्षिण भारत के तेलुगु और काञ्ची की मुद्रित प्रतियों में मिलते हैं किन्तु उत्तरभारत के काशी आदि स्थानों और पुणे, मुम्बई, कोलकाता आदि स्थानों से मुद्रित लिङ्ग पुराण की प्रतियों में वीरशैव तत्त्व का उल्लेख गायब है। इसका कारण उक्त क्षेत्रों में वीरशैव सिद्धान्त के प्रचार में कमी और इस ओर वीरशैव विद्वानों द्वारा पर्याप्त ध्यान न देना भी हो सकता है।

संस्कृत-साहित्य को वीरशैवों का योगदान अपार है। वीरशैव सिद्धान्त की प्रतिपादक संस्कृत की कृतियाँ संख्या की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं। वीरशैव का संस्कृत साहित्य हजारों वर्ष प्राचीन है।

विद्वान् एम. एस. बसवराजय्या (सेवानिवृत्त, वरिष्ठ अनुसन्धान सहायक) ने वीरशैव संस्कृत साहित्य का दिग्दर्शन (संक्षिप्त निरुपण) इस प्रकार किया है[४७]—

१. शिवयोगी शिवाचार्य (दशम शताब्दी ई.) – सिद्धान्तशिखामणिः।

२. ईशानशिवगुरु (दशम शताब्दी ई.) – रेणुकचरितम् ।

३. सोमशम्भु (१०७३ ई.) – सोमशम्भुपद्धतिः।

४. श्रीपतिपण्डित (१०७०ई.) – कृति अज्ञात।

५. मल्लिकार्जुन पण्डित (११६०) – बसवराजीयम्, पञ्चप्रकारगद्यम्, बसवोदाहरणम्, षट्स्थलगद्यम्, वीरशैवशिखामणिः, वृषभाष्टकम्, बसवाक्षरमालागद्यम्, वृषभावतरणम्,

४७. देगुलज्योतिः, पृ. १९०

बसवपञ्चरत्नम्, बसवमुक्त-पदग्रस्थस्तोत्रम्।

६. पालकुरिके सोमनाथ (११६५ ई.) – कृति अज्ञात।
७. मल्लार्य गुरु (११६५ ई.) – शिवज्ञानप्रदीपिका।
८. लक्ष्मीदेव गुरु (११६५ ई.) – सारोद्धारः।
९. पद्मराज (११६५ ई.) – सानन्दचरितम्।
१०. ज्योतिर्नाथ (११६५ ई.) – शैवरत्नाकरः।
११. जगदाराध्य नागेश गुरु – शिवज्ञानसमुच्चयः।
१२. नीलकण्ठ नागनाथाचार्य – वीरमाहेश्वराचार्यसङ्ग्रहः।
१३. गुरुदेव (१३५०) – वीरशैवाचारप्रदीपिका।
१४. नीलकण्ठशिवाचार्य (१४००ई.) – क्रियासारः।
१५. माइदेव (१४३० ई.) – अनुभवसूत्रम्, विशेषार्थप्रकाशिका शिवाधवशतकम्, शिवावल्लभ-शतकम्, त्रिपुरेश्वरशतकम्, प्रभुगीता।
१६. जक्कणार्य (१४३० ई.) – एकोत्तरशतस्थली।
१७. गुरुराज – पण्डिताराध्यचरितम्।
१८. कंची शङ्कराराध्य – बसवपुराणम्।
१९. स्वप्रभानन्दनाथ – शिवाद्वैतमञ्जरी।
२०. चन्नसदाशिवयोगी (१५००ई.) – शिवयोगप्रदीपिका।
२१. आनन्दबसवलिंग यति – माचिदेवमनोविलासः।
२२. सम्पादना सिद्धवीरणार्य (१६००ई.) – अनादिवीरशैवाचारसंग्रहः।
२३. षडक्षरदेव (१६५५ ई.) – कविकर्णरसायनम्, भक्ताधिक्यरत्नावलिः, शिवाधिक्यरत्नावलिः, शिवस्तवमञ्जरी, नमःशिवायाष्टकम्, वीरभद्रोदाहरणगद्यम्, शिवस्तोत्रसुमंगली, इन्दुधरस्तोत्रम्,

सिद्धलिङ्गाष्टकम्, शिवमानसस्तोत्रम्, इष्टलिङ्गाष्टकम्, इष्टलिङ्गस्तवनम्, बसवाष्टकम्, नीलाम्बिकास्तोत्रम्, षडक्षरमन्त्रस्तोत्रम् तत्त्वत्रयस्तोत्रम्, वीरभद्रविजयदण्डकम्। (कुल सत्रह (१७) कृतियाँ)

२४. नन्दिकेश्वर (१७०० ई.) – लिङ्गधारणचन्द्रिका।

२५. बसवराज – बसवराजीयम्।

२६. केलदि बसवभूपाल (१६९८-१७१५ई.) – शिवतत्त्वरत्नाकरः, सुभाषितसुरद्रुमः, सूक्तिसुधाकरः।

२७. संगमेश्वर यति (१७०० ई.) – संगमेश्वरविलासभाष्यम्।

२८. गुरुबसव – वीरशैवाचारसुधानिधिः।

२९. मरितोंटदार्य – वीरशैवानन्दचन्द्रिकाः।

३०. मौनप्पा पण्डित – वीरशैवाचारकौस्तुभः।

३१. सप्तेश्वर यति – अमृतसप्तेश्वरभाष्यम्।

३२. निर्वाण मन्त्री (१७२५ ई.) – क्रियासारव्याख्या।

३३. निट्टूरु नञ्जणार्य – वेदान्तसारः, वीरशैवचिन्तामणिः।

३४. बसवभूप – पञ्चश्लोकी व्याख्या (वीरशैवसञ्जीवनी)।

३५. द्वितीय मुरिगा गुरुसिद्ध – प्रभुलीला, लिङ्गाचाररचनागमः।

३६. नञ्जराज (१७४० ई.) – वैद्यसारसंग्रहः, संगीतगङ्गाधरम्।

३७. षडक्षरमन्त्री (१७४५ ई.) – वीरशैवधर्मशिरोमणिः।

३८. सर्पभूषण शिवयोगी (१८४५ ई.) – ज्ञानशतकम्।

३९. वीरेश्वरशास्त्री (मरितोंटदार्य) (१८६० ई.) – वीरशैवान्वयचन्द्रिका।

४०. मल्लनाराध्य (१८०० ई.) – शिवलिङ्गसूर्योदयः (नाटकम्)।

४१. अभिनवकालिदास बसवप्पाशास्त्री (१८४३-१८९१ ई.) – शिवाष्टकम्, त्रिषष्टिपुरातनगणस्तवः, अम्बाषोडशमञ्जरी, शिवभक्तसुधारसतरङ्गिणी, आर्याशतकम्।

४२. सोसले रेवणाराध्य – वीरशैवसिद्धान्तः, प्रमथगणपद्धतिः, शिवाधिक्यशिखामणिः, शिवाधिक्यप्रदीपिकाः, कविसमयविलासः, कर्मपाकप्रदीपिका।

४३. सर्वात्म शम्भु – सिद्धान्तदीपिका।

४४. नन्नय – कर्णावतंसः (सुभाषितम्)।

४५. रेवणसिद्ध – वीरभट्टीयम्।

४६. -------- – श्रुतिसारभाष्यम् (अज्ञातकर्तृक)।

४७. मुम्मडितम्म नृपाल (१६६५ ई) – रसिकमनोरञ्जनम्, कौमुदीव्याख्यानम्, (व्याकरणम्)।



अध्याय ६

वेदों में वीरशैव सिद्धान्त

वीरशैवधर्म वेद-प्रमाण को स्वीकार करता है। कामिकादि वातुलान्तवाद के अट्ठाईस शिवागम वैदिक ही हैं। वे धर्म को ही प्रमुखता देते हैं तथा वेदविरुद्ध धर्मों का खण्डन करते हैं। अतः वेद और वेदसम्मत सिद्धान्तरूपी आगमों का ध्येय एक ही है। आगमों का प्रामाण्य भी श्रुतियों के समान ही है।[४८]

वेद अपूर्व ज्ञान का भण्डार है। वेद का अर्थ ही वस्तुतः ज्ञान है। वह सभी मानवप्राणियों का धर्म है — 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।' वीरशैवधर्मानुयायिओं ने वैदिक कर्मकाण्ड और विशेष कर हिंसा प्रधान यज्ञ-यागादिकों को छोड़ कर वेदविहित धर्म अर्थात् जप-तप-ध्यान-लिङ्गधारण, रुद्राक्ष और भस्म को अंगीकार कर लिया है। इस तरह वैदिक ज्ञान-काण्ड की सभी विशिष्ट बातों का अनुपालन करने से वीरशैव भी प्रकारान्तर से वैदिक धर्म ही है। इस धर्म में आगमों को प्रधानता दी गयी है और वेद गौण हैं। इसीलिए वीरशैवमताचार्य वीरशैवधर्म को 'तान्त्रिक वैदिक धर्म' भी कहते हैं।

ध्यान, जप, तप और कर्म (अर्थात् लिङ्गधारण या लिङ्गार्चन तथा भस्म धारण) ये पञ्चयज्ञ वीरशैव के लिए मान्य हैं। शिव का ध्यान ही उसके लिए तप है। कर्म का अभिप्राय लिङ्गार्चन और भस्म-धारण से है। शिवपञ्चाक्षर मन्त्र ही जप है। रुद्राष्टाध्यायी और शिव (रुद्र) के वैदिक मन्त्रों का अभ्यास (आवृत्ति) ही शिव का ध्यान है। इस तरह सम्पूर्ण वेदाध्ययन शिवरूप ही है। शिवागमों का अर्थग्रहण करना ही ज्ञान है। 'क्रियासार' (उ.४, पृ. ३०६) में इस विषय में एक विशेष बात कही गयी है —

अष्टावरणविज्ञानी पञ्चाचारपरायणः।
वैदिकं कर्म कुर्वीत ज्ञानैकफलसाधनम् ।
न कुर्यात् पाशवं कर्म वीरशैवः कदाचन ।।

---

४८. सिद्धान्तशिखामणि, पृ. ५

अनेक वेदोक्तियों में लिङ्गधारण के सम्बन्ध में कई मन्त्र उल्लिखित हैं। इन मन्त्रों के अलग-अलग भाष्य विभिन्न धर्मावलम्बी आचार्यों ने किये हैं। वीरशैव धर्मानुयायी आचार्यों ने भी अपने धर्म के अनुसार उसके भाष्य किए हैं। उदाहरण के लिए — 'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणरूपं ते' (ऋग्वेद, अष्टक७, अध्याय-३, वर्ग-८) मन्त्र की व्याख्या, 'लिङ्गधारण चन्द्रिका' के कर्ता श्री नन्दिकेश्वर शिवाचार्य ने लिङ्गधारण-परक की है।[४९] इसी प्रकार, ऋग्वेद के मन्त्र — 'अयं मे हस्तो भगवान् अयं मे भगवत्तरः' — (अष्टक६, अध्याय-३, वर्ग -२५) की व्याख्या षट्शास्त्र के पारंगत महामहोपाध्याय श्रीशिवकुमार शास्त्री मिश्र (काशी) ने लिङ्गधारण चन्द्रिका की 'शरत्' नामक टीका में की है।[५०] इसी प्रकार का भाष्य शुक्ल यजुर्वेद के पुरुष सूक्त पर काशी के चिद्घन शर्मा ने किया है। रुद्राष्टाध्यायी के मन्त्र —'या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी' --------' मन्त्र का अर्थ स्पष्टतः लिङ्गधारण-परक किया गया है। 'सिद्धान्तशिखामणि' नामक ग्रन्थ में लिङ्गधारण हेतु स्थान की स्पष्टता —'अघोरा पापकारिणी या ते रुद्र शिवातनुः' द्वारा की गयी है। इसी मन्त्र की व्याख्या सोसले के श्री रेवणाराध्य ने कन्नड़ भाषा में की है। यजुर्वेद के — 'नमो ब्रह्मणोधारणम् अस्त्वनिराकरणम्' मन्त्र के अतिरिक्त ऐसे ही सहस्रों श्रुतिवाक्यों का उल्लेख लिङ्गधारण के सम्बन्ध में श्रीशिवपूजा शिवलिङ्ग जी स्वामी ने अपने ग्रन्थ 'श्रुतिसारभाष्य' में किया है।

इसी प्रकार, वीरशैव दर्शनकारों ने वैदिक मन्त्र, 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्' का विनियोग लिङ्गधारण, भस्मधारण, रुद्राक्षधारण, महामन्त्रादि जपानुष्ठान में बताया है।

कर्नाटक के विद्वान् शोधकर्ता श्री शं. भा. जोशी ने 'शिवरहस्य' नामक पुस्तक में लिखा है कि 'वीरशैवों का उद्गम वेदों से होने में कोई सन्देह नहीं है। रुद्राध्याय में उल्लिखित कुछ नाम वीरशैवों के लिए विशिष्ट हैं(पृ.४१)।

इसी प्रकार त्रिषष्टि पुरातनों की कल्पना के अनुसार इसका मूलाधार ऋग्वेद ही है और यह कथन समीचीन है कि वैदिक युग के 'वीररुद्रीय' ही वर्तमान वीरशैव के मूलपुरुष थे। आज यद्यपि वे 'लिङ्गवन्त' नाम से जाने जाते हैं किन्तु इसमें

---

४९. लिङ्गधारणचन्द्रिका, पृ. १२५-१२६

५०. यह ग्रन्थ, शैवभारती, जंगमवाड़ी मठ काशी से १९०५ ई. में प्रकाशित है

प्रयुक्त लिङ्ग-शब्द अपने मूलार्थ से विहीन हो चुका है। जो विषय वीरशैव में है वह लिङ्गवन्त में नहीं है।[५१]

भारत के विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक सम्प्रदायों ने वेदमन्त्रों का प्रामाण्य स्वीकार करते हुए उनसे अपने मतों-सिद्धान्तों को उद्भावित एवं समर्थित किया है। वीरशैव आचार्य और दार्शनिक भी वीरशैवसिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिए श्रुतिप्रमाणों का उल्लेख करते हैं। वस्तुतः वीरशैव सिद्धान्त भले ही शतप्रतिशत वेदाश्रयी न हो किन्तु उसका आंशिक ही सही, सम्बन्ध वेदों से है — यह प्रमाणित है। वैसे भी आचार्यों और दार्शनिकों के विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तों, भाष्यों, व्याख्याओं से ज्ञात होता है कि इनका सम्बन्ध कतिपय चुने हुए वेदमन्त्रों के साथ होने के कारण आंशिक ही है।



५१. शिवरहस्य, पृ. ६९

अध्याय ७

उपनिषदों में वीरशैव-साहित्य

श्रीकरभाष्य में उपनिषत्-मन्त्रों की वीरशैवसिद्धान्त परक व्याख्या मिलती है। किन्तु अन्य आचार्यों द्वारा इस प्रकार के उपनिषद्-भाष्य दृष्टिगोचर नहीं होते। वृषभ पण्डिताराध्य द्वारा विरचित तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य तेलुगू भाषा में प्रकाशित हुआ है। इनका महानारायणोपनिषद्भाष्य १९२९ ई. में जंगमवाड़ी मठ, काशी से प्रकाशित हुआ है। वृषभ पण्डिताराध्य ने अपने भाष्य पूर्ववर्ती आचार्यों उद्भटाराध्य, वेमनाराध्य आदि के द्वारा उपनिषदों पर किए गए वीरशैव भाष्यों का उल्लेख किया है। किन्तु आचार्यों द्वारा किए गए ऐसे सभी भाष्य आज उपलब्ध नहीं है।

प्रसिद्धभाष्यकार उमचगी शङ्करशास्त्री ने ईश, केन, मुण्डक और सिद्धान्तशिखोपनिषदों पर महत्त्वपूर्ण वीरशैवभाष्यों की रचना की है। गिरियापुर के ष. ब्र. श्री सदाशिव शिवाचार्य महास्वामी ने कैवल्योपनिषद् पर सदाशिवभाष्य की रचना की है। श्रीमद्भगवद्गीता पर विद्वान् डॉ. सिद्धप्पाराध्य द्वारा विरचित वीरशैव भाष्य उल्लेखनीय है। आस्थान के विद्वान् एम. जी. नंजुंडाराध्य ने मुण्डक और कैवल्य उपनिषदों पर कन्नड भाषा में सम्प्रदायानुकूल टिप्पणियाँ लिखीं हैं। इनके अतिरिक्त अथर्वशिखा, अथर्वशिर, वेदान्तसारोपनिषद्, भक्तियोगोपनिषद्, निर्लेपोपनिषद्, पिप्पलोपनिषद्, प्रसादज्ञानवालोपनिषद्, वीरलैंगोपनिषद्, लिङ्गोपनिषद्, सिद्धान्तशिखोपनिषद्, रुद्रोपनिषद्, सदानन्दोपनिषद्, शिवसङ्कल्पोपनिषद् आदि उपनिषद् ग्रन्थों में हम वीरशैव तत्त्वों को देख सकते हैं।[५२] श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी वीरशैव तत्त्वों का उल्लेख मिलता है।



---

५२. शैवोपनिषत् संग्रहः (काशीनाथ ग्रन्थमाला, मैसूर, १९४८ ई.) द्वितीयावृत्ति

अध्याय ८

शिवागमों में वीरशैव साहित्य

आगम हमारे आध्यात्मिक साहित्य के महनीय आधार हैं। आगम भी वेदों के ही समान समादृत है। उनकी मान्यता वेदों से कम नहीं है। आगम का अर्थ है परम्परा से प्राप्त पूर्ण ज्ञानराशि। वेदागमों को 'निगमागम' नाम से जाना जाता है। वेदमन्त्रों के अर्थ के विषय में सुनिश्चय न होने के कारण भाष्यकारों में मतभेद उत्पन्न हुए। फलतः द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत और विशिष्टाद्वैत प्रभृति मत-मतान्तर पैदा हो गए।

आगमों में अर्थ विषयक स्पष्टता होने के कारण यहाँ मतभेद की सम्भावना प्रायः नहीं के बराबर है। आगमों को 'तन्त्र' भी कहा जाता है। आगमों में शैव, शाक्त और वैष्णव — ये तीन विभाग हैं। इसका अर्थ है कि ये शिव, शक्ति और विष्णु – इन तीन प्रमुख देवताओं के विषय में हैं। इनके अतिरिक्त सौर (सूर्य सम्बन्धी), गाणपत्य (गणपति सम्बन्धी) जैसे भेद भी है। कामिक-वातुल अट्ठाईस शिवागमों को सिद्धान्त कहते है। ये अन्य कुछ नहीं अपितु वेदों के सारभूत हैं। इसीलिए इन्हें वेदतुल्य प्रमाण माना गया है — "सर्ववेदार्थसारत्वात् प्रामाण्यं वेदवत्सदा।" इसके अतिरिक्त वाम-दक्षिण-मिश्र नामक तीन प्रभेद भी हैं। वाम शक्तिप्रधान है, दक्षिण भैरवात्मक है और मिश्र सप्तमातृकापरक है। आगमों के उत्तरार्ध में वीरशैव प्रोक्त है—

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते ।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम् ।।[५३]

आगम-संस्कृति अति प्राचीन काल से ही विद्यमान है। कालनिर्णय के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं है। ई. पू. सैकड़ों वर्ष रचनाकाल वाले महाभारत

---

५३. सिद्धान्तशिखामणिः, पृ. ५

(शान्ति पर्व, अध्याय २५७) और श्रीमद्भगवद्गीता में शिवागमों के अनेक श्लोक प्राप्त होते हैं। अनुमानतः आगमों का काल ५०० ई. के पूर्व ही है। काञ्ची में उल्लिखित एक शिलाशासन (शिलालेख) में, जो ५०० ई. का है, अट्ठाईसों शिवागमों के नाम हैं। कुछ आगमों की भाषा, आचार-विचारों का अनुशीलन करने से वे आधुनिक कारण के प्रतीत होते हैं। आगमिक (आगम-सृष्टि-समर्थ) विद्वानों द्वारा समय-समय पर इनके लिखे जाने का उल्लेख मिलता है।

वीरशैव धर्म के विषय में प्रतिपादन करने वाले सभी शैवागम सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। शोलापुर के वारद ग्रन्थमाला के अन्तर्गत परमेश्वर-आगम मुद्रित हुआ है। श्री शंकरप्पा अच्चप्पा टोप्पगी द्वारा १९१४ ई. में विरचित 'तन्त्रसङ्ग्रह' नामक संकलन में वातुलशुद्धाख्यतन्त्र, सूक्ष्मतन्त्र, देविकालोत्तरतन्त्र तथा पारमेश्वरतन्त्र सन्निविष्ट हैं। काशीनाथ ग्रन्थमाला मैसूर से परमेश्वर, सूक्ष्म, कारण और चन्द्रज्ञान नामक आगम प्रकाशित हो चुके हैं। श्री त. आ. कृष्णदीक्षित द्वारा संकलित 'वातुलशुद्धाख्यतन्त्र' प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त आस्थान विद्वान् श्री एम. जी. नजुंडाराध्य द्वारा सम्पादित 'शिवागमसौरभ' नामक बृहद्ग्रन्थ १९८६ ई. में डॉ. ज. च. नि. अध्ययनपीठ तथा शोधसंस्थान द्वारा प्रकाशित हैं। इन उल्लिखित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है —

१. वातुलाशुद्धाख्यतन्त्र — इसमें मूलतः मात्र ८४ श्लोक हैं।
२. सूक्ष्मतन्त्र — इसमें १० घटस्थल और ८०९ श्लोक हैं।
३. देविकालोत्तरतन्त्र — इसमें ८४ श्लोक हैं।
४. पारमेश्वरतन्त्र — इसमें २२ घटस्थल और २२५१ श्लोक है।
५. चन्द्रज्ञान आगम — इसमें अष्टावरण और आचारशील के ६४ विचार सहित शैवप्रमेयों के विषय उल्लिखित हैं।

प्राच्य विद्या शोधनालय, मैसूर द्वारा प्रकाशित 'वातुलाशुद्धागम, भाग १-२ (१९८३ ई.) तथा वीरागम, भाग-१ (१९८८ ई.) में वीरशैव सिद्धान्त का विस्तृत निरूपण है। प्रमुख आगम ग्रन्थों में वीरशैवतत्त्व के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —

(क) सूक्ष्मागम – एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वापि शाङ्करी ।
पूजयेन्नियतं लिङ्गं प्राणलिङ्गपरायणः ।।

(ख) वातुलागम – मूर्ध्नि कण्ठे भुजे हस्ते हृत्स्थले नाभिसंज्ञके ।
विशेषमेकदेशे तु धारयेच्छिवलिङ्गकम् ।।

(ग) परमेश्वरागम – न वीरशैवसदृशं मतमस्ति जगत्त्रये ।
सर्वभोगप्रदं पुण्यं शिवसायुज्यदायकम् ।।

(घ) वीरागम – गुरोश्च जङ्गमस्यैव शिवलिङ्गस्य पूजनम् ।
एषां पादोदकं चैव भुक्तशेषान्नमेव च ।।

इसी प्रकार, षट्स्थल, अष्टावरण, पञ्चाचार तथा दीक्षा शिवयोग आदि वीरशैव तत्त्वों के मूलस्रोतों को भी इन आगमों में ही देख सकते हैं। जैसे गंगोत्री से पवित्र गंगा उसी तरह शिवागमों से वीरशैव धर्म भी निकला हुआ है।



अध्याय ९

सुप्रसिद्ध संस्कृत पुराणों में वीरशैव साहित्य

जिन पुराणों में वीरशैव तत्त्व समाहित हैं उनमें प्रमुख हैं — शिवपुराण, स्कन्दपुराण, लिङ्गपुराण और शिवरहस्य (पुराण)।

शिवपुराण (वायवीय संहिता, पूर्वोत्तर भाग) –

इस पुराण में वीरशैवदीक्षा की अनेक पद्धतियाँ विद्यमान हैं। इस संहिता के पूर्व और उत्तर भाग में कुल मिलाकर ६० प्रकरण और ४०२५ श्लोक हैं। इसके उत्तरार्ध में प्राय: अधिकांशतया वीरशैव का ही विस्तृत वर्णन है। शिवपुराण की विद्येश्वर संहिता में शिवभक्त को सदैव शिवलिङ्ग धारण करना अनिवार्य बताया गया है। इससे भक्त जंगमपूजा से मुक्त हो सकता है। गुरुपूजा, तीर्थप्रसाद का सेवन आदि क्रम अत्याश्रमी और शिवाश्रमी दोनों के लिए विहित है। शिवा-दीक्षा लेने का सामान और पूर्ण अधिकार भी निरूपित है। शिवपुराण की सनत्कुमार संहिता (६.४३) में 'गृहिणो लिङ्गिनो वापि' आदि वाक्य भी दृष्टिगोचर होते हैं।

स्कन्दपुराण (केदारखण्ड, ६-७) –

इस पुराण के सन्दर्भित अंश में कई श्लोकों में वर्णन मिलता है कि ब्रह्मा-विष्णु समेत अनेक देवताओं ने शिवलिङ्ग धारण किया था और लिङ्गी धर्म की स्थापना का विवरण भी प्राप्त होता है। वीरशैवधर्म का उद्‌देश्य तो वहाँ —'लिङ्गेन सह पञ्चत्वं लिङ्गेन सह जीवितम्' – पंक्ति द्वारा निरूपित हुआ है। इसी पुराण के अरुणाचल माहात्म्य (६.११) में त्रिपुर और महिषासुर द्वारा लिङ्गधारण का प्रस्ताव भी प्राप्त होता है। इसी पुराण की शङ्कर-संहिता में कहा गया है कि वीरशैव कहलाने का अधिकारी वही है जो अपनी बांयीं हथेली पर इष्टलिङ्ग रखकर तल्लीन मन से उसकी पूजा करता है —

यो हस्तपीठे निजलिङ्गमिष्टं विन्यस्य तल्लीनमन:प्रसार: ।
बाह्यक्रियासङ्कुलनि:स्पृहात्मा सम्पूजयत्यङ्ग स वीरशैव: ।।

पद्मपुराण (वातुलखण्ड, ६-१०) –

यहाँ 'धारणं शङ्करस्यैव लिङ्गमेव महेश्वरम्' — इस सूक्ति में लिङ्गधारण और लिङ्ग को रखने की विधि तथा करपीठ में शिवलिंग को रखकर पूजा करने का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

सौरपुराण –

इसमें वीरशैव के प्रवर्तक शङ्कुकर्ण, गोकर्ण, डिंडी, मुंडी आदि गणेश्वरों का वर्णन प्राप्त होता है।

स्कन्दपुराण (शङ्करसंहिता, ६.८४) –

इसमें श्रीशैल जगद्गुरु सदानन्द शिवाचार्य जी द्वारा किया गया वर्णन मनोज्ञ है —

रुद्राक्षमालाभरणो धृतपाशुपतव्रतः ।
अतिवर्णाश्रमी योगी जीवन्मुक्तो जगद्गुरुः ।।

पञ्चमवेद महाभारत के अनुशासनपर्व में भीष्म-युधिष्ठिर-संवाद के अन्तर्गत युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि लिङ्गी ब्राह्मण और (जंगम) शिवयोगी में से दान प्राप्त करने का श्रेष्ठ अधिकारी कौन है?—

स्ववृत्तिमभिपन्नाय लिङ्गिने चेतराय च ।
देयमाहुर्महाराज उभावेतौ तपस्विनौ ।।

(दानधर्म पर्व, २२.२)

इस प्रश्न के उत्तर में भीष्म ने कहा कि दोनों तपस्वी (अर्थात् शिवयोगी) हैं अतः दोनों ही दान देने के पात्र हैं।

पद्मपुराण के पातालखण्ड में कहा गया है कि अधमवृत्ति के पापी जन भी यदि लिङ्गधारण करते हैं तो उन्हें यमलोक नहीं देखना पड़ता—

अधमाधमवृत्तीनां सदा वै लिङ्गधारणम् ।
पापिनामपि चाश्चर्यं यमलोको न विद्यते ।।

लिङ्गपुराण और स्कन्दपुराण — दोनों में ही इष्टलिङ्गधारण करने का स्पष्ट उल्लेख है। स्कन्दपुराण (शङ्कर संहिता) के अध्याय ८१ से ८४ तक में

वीरमाहेश्वराचार आदि वीरशैव तत्त्वों का सुन्दर प्रतिपादन है। वहाँ हम अष्टावरण-पञ्चाचार-षट्स्थल स्वरूप को देख सकते हैं—

लिङ्गेन धारयेल्लिङ्गं ध्यायेच्चित्तेन शङ्करम् ।
स्वात्मना भावयेत्पूर्णमैक्यभावेन सर्वतः ।।
कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम् ।
मानवः शिवयोगेन शिवो भवति निश्चयम् ।।
भक्तो माहेश्वरश्चैव प्रसादी प्राणलिङ्गकः ।
शरणैक्यस्थलैः षड्भिः क्रमाल्लिङ्गमुदाहृतम् ।।'[५४]

स्कन्दपुराण (शङ्करसंहिता) में ही (६.८३) इष्टलिङ्ग से वियुक्त शरीर का त्याग करने का निर्देश भी मिलता है —

धारयेदवधानेन लिङ्गं सद्गुरुणार्पितम् ।
प्रमादात्पतिते लिङ्गे प्राणानपि परित्यजेत् ।।

इस तरह भारत के ज्ञानकोश और भारतीय संस्कृति के प्रतीक माने जाने वाले पुराणों और महाभारत आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों का अनुशीलन करने से हमें ज्ञात होता है कि इनमें वीरशैव तत्त्व प्राचुर्येण सन्निहित हैं। इस आधार पर भी वीरशैव धर्म की प्राचीनता और संस्कृत वाङ्मय के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्ध का पता चलता है।



---

५४. काञ्ची निवासी पूवाड वेंकटराव मान्यवर द्वारा १८७९ ई. में प्रकाशित उत्तर भाग का इक्कीसवाँ अध्याय

अध्याय १०

संस्कृत में स्वतन्त्र वीरशैव-कृतियाँ

(तद्विषयक प्रमुख धार्मिक-साहित्यिक कृतियों का परिचय)

नन्दिकेश्वरकारिका (७०० ई. पू.)

'नन्दिकेश्वरकारिका' पर उपमन्यु शिवाचार्य द्वारा लिखित 'तत्त्वविमर्शिनी' टीका और नागोजि भट्ट (१६०० ई.) द्वारा लिखित 'प्रदीप' टिप्पणी विद्यमान है। इस ग्रन्थ 'नन्दिकेश्वरकारिका' में कुल २७ कारिकाएँ हैं। महर्षि पतञ्जलि ने इस अक्षर समाम्नाय को 'ब्रह्मराशि' कहा है। 'ब्रह्मराशि' नाम से प्रसिद्ध माहेश्वर सूत्रों का उपबृंहण करते हुए नन्दिकेश्वर ने शिवाद्वैत तत्त्व को इन कारिकाओं में निबद्ध किया है। कारिकाओं का निहितार्थ है कि शक्तिविशिष्ट परशिव ही इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय के कारण हैं।

नन्दिकेश्वरकृतः अभिनयदर्पणः

भारतीय नाट्यपरम्परा के आद्य आचार्यों में नन्दिकेश्वर शिवाचार्य सर्वप्रमुख हैं। माहेश्वरसूत्रों पर शिवाद्वैत कारिकाओं के लेखक नन्दिकेश्वर दाक्षिणात्य हैं। अनुमानतः ये श्रीशैल के निवासी थे। 'अभिनयदर्पण' के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इनके काल में वीरशैव धर्म लोकप्रचलित था। शिलालेखों से ज्ञात होता है कि ५००-६०० ई. में काञ्ची के शासक पल्लव राजा लिङ्गधारी थे। पल्लव राजाओं के विशेषण के रूप में 'शिवचूडामणि', 'महेश्वरशिखामणि' 'दीप्तिमौलि' जैसे अनेक पद प्रयुक्त होते थे। श्रीशैल पीठ के शिष्य पालकुरिके सोमनाथ के मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य चरितों में पल्लवराजाओं के सम्बन्ध उल्लेख प्राप्त होता है।

'अभिनयदर्पण' में वीरशैवसंस्कृति, 'वामहस्त में शिवलिङ्ग रखकर अभ्यर्चना अर्पित करने के द्वारा अभिव्यक्त हुई है। जैसा कि बताया जा चुका है, स्कन्दपुराण की शङ्करसंहिता में कहा गया है कि वामहस्त में इष्टलिंग को रखकर

पूजा करते हुए बाह्यक्रियाओं को भूलकर तन्मय हो जाने वाला ही वीरशैव है। नन्दिकेश्वर ने अपनी कृति 'अभिनयदर्पण' में 'शिवलिङ्गहस्त' नाट्यमुद्रा का अत्यन्त मनोज्ञ प्रदर्शन किया है। 'वामावर्तहस्ते विन्यस्तः शिखरः शैवलिङ्गकः' अर्थात् अर्धचन्द्रहस्त में वामशिखरहस्त रखने से वह शिवलिङ्गहस्त बन जाता है। वामहस्त पर शिवलिङ्ग रखकर उसकी पूजा करना – यह वीरशैवाचार है। प्रेक्षकों को ज्ञान कराने के लिए इस करपीठार्चन संस्कार का प्रदर्शन उनके समक्ष होना चाहिए। विद्वानों के मतानुसार, ऐसा करना वीरशैव संस्कृति है।

ब्रह्मसूत्र पर वीरशैव भाष्य

क्रियासार नामक ग्रन्थ के पृ. ३२-३३ पर 'नीलकण्ठशिवाचार्यनाम्ना भाष्यमचीकरोत्' तथा 'विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तप्रतिपादनमुत्तमम्' आदि वाक्यों के आधार पर लगभग ८०० ई. में श्री नीलकण्ठशिवाचार्य द्वारा ब्रह्मसूत्र पर वीरशैव भाष्य की रचना का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त भी अनेक आचार्यों द्वारा ब्रह्मसूत्र पर वीरशैवसिद्धान्ताश्रित भाष्य किए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। 'वेमनाराध्य-उद्भटाराध्य-मरुलसिद्ध-रेवणसिद्धादिभिर्महात्मभिः कृतात् वेदान्तभाष्यादिग्रन्थात्' इत्यादिवाक्यों से हमें इन अचार्यों द्वारा ब्रह्मसूत्र पर वीरशैव भाष्य लिखे जाने का सङ्केत मिलता है किन्तु इस समय ये भाष्य उपलब्ध नहीं हैं। श्रीकरभाष्य में, 'नीलकण्ठ-भगवत्पाद-भट्टभास्कर-घण्टानाथ-ज्योतिर्नाथादिभिः पूर्वाचार्यैः छान्दोग्यभाष्यम्'[५५] तथा आगे चलकर 'नीलकण्ठभाष्यम्' उल्लेखों से श्रीनीलकण्ठ शिवाचार्य द्वारा ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर भाष्य किया जाना विदित होता है।

सिद्धान्तशिखामणिः

वीरशैव सिद्धान्त को समग्रतया क्रमबद्ध-व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने वाले संस्कृत ग्रन्थों में 'सिद्धान्तशिखामणि' का स्थान अग्रगण्य है। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के कर्ता शिवयोगि शिवाचार्य जी (स्थितिकाल-दसवीं शताब्दी ई. का पूर्व) हैं। पूर्व में जगद्गुरु रेणुक भगवत्पाद ने महर्षि अगस्त्य को वीरशैव धर्म का उपदेश दिया था। रेणुक अगस्त्य संवाद को श्रीशिवयोगि शिवाचार्य ने इस ग्रन्थ में संगृहीत

५५. श्रीकरभाष्य, १.१.२२

कर महान् लोकोपकार किया है। केवल शिवागम से ही 'एकोत्तरशतस्थल' चित्रित (चिह्नित) यह एकमात्र प्रामाणिक ग्रन्थ है और वीरशैव सिद्धान्त की 'सीमन्तमणि' है। 'रेणुकाराध्यसंवादं निगमागमविश्रुतम्' – ऐसा कहते हुए प्रख्यात पण्डित मरितोंटदार्य जी ने सिद्धान्तशिखामणि पर 'तत्त्वदीपिका' नामक संस्कृत टीका लिखी है। इस ग्रन्थ में इक्कीस परिच्छेद हैं। यह ग्रन्थ एकोत्तरशतस्थल, अष्टावरण, सदाचार, सर्वाचार, शिवयोग तथा शील आदि विचारों का प्रतिपादन करता है। यह ग्रन्थ, कन्नड़, हिन्दी, तमिल, तेलुगु, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं में अनूदित हो चुका है।

श्रीकरभाष्यम्

श्रीकरभाष्य के कर्ता श्रीपति पण्डिताराध्यजी (स्थितिकाल १०६० ई.) हैं। यह ग्रन्थ भी वीरशैव सिद्धान्त के प्रतिपादक ग्रन्थों में प्रमुख है। प्रस्थानत्रयी में से एक, 'बादरायण ब्रह्मसूत्र' पर यह विशिष्टाद्वैत भाष्य है। श्रीकरभाष्य की रचना के लिए पण्डिताराध्य ने अगस्त्य कृत संवाद को ही मुख्य आधार माना है। वीरशैव सम्प्रदाय प्रायः अपनी कृतियों में 'पण्डितत्रयी' — श्रीपति पण्डित, मञ्चण्णपण्डित और मल्लिकार्जुन पण्डित — को स्मरण करना एक सर्वमान्य पद्धति बन गयी है। श्रीपति पण्डिताराध्य के विषय में संस्कृत, कन्नड़ और तेलुगू भाषा के अनेक ग्रन्थों में लिखा गया है। इन्होंने श्रीकरभाष्य में अपना पाण्डित्य विपुलरूप से प्रकट किया है। ब्रह्मसूत्रों का वीरशैवपरक अर्थ करना महान् वैदुष्यपूर्ण कार्य है। मैसूर प्राच्य विद्या संस्थान द्वारा यह कृति दो खण्डों में क्रमशः १९७७ और १९७८ ई. में प्रकाशित हुई है।

सोमनाथभाष्यम्

इस कृति के कर्ता पालकुरिके सोमनाथ हैं। सोमनाथ का स्थितिकाल ११६५-१२०० ई. माना जाता है। इस कृति को 'बसवराजीयम्' नाम से भी जाना जाता है। इसमें कुल २६ प्रकरण हैं। लिङ्गधारण, लिङ्गार्चन, वीरशैवमाहात्म्य, विभूति एवं रुद्राक्ष धारण आदि विषय इसमें सन्निविष्ट हैं। ग्रन्थारम्भ का श्लोक है—

भाष्यं वेदपुराणसम्मतमिदं श्रीसोमनाथप्रभोः ।
एतत्तुल्यमहो कृतं शिवमयं काण्डं प्रकाण्डं भुवि ।।

इसमें ग्रन्थ का कर्तृत्व और उसका महत्त्व सूचित किया गया है।

पाल्कुरिके सोमनाथ ने इसके अतिरिक्त संस्कृत में वृषभाष्टक, बसवमुक्तापद, गृहस्थस्तोत्र, बसवाक्षरमालागद्य, बसवोदाहरण, वृषभावतरण, बसवपञ्चरत्न आदि ग्रन्थों की रचना की है। इस महाकवि का यह वैशिष्ट्य है कि इन्होंने संस्कृत और तेलुगू-दोनों ही भाषाओं में समान अधिकार से रचनायें की हैं।

क्रियासारः

क्रियासार के कर्ता श्री नीलकण्ठ शिवाचार्य १४०० ई. के लगभग स्थित थे। नीलकण्ठ शिवाचार्य के एक पूर्वज का नाम भी नीलकण्ठशिवाचार्य था जिन्होंने ब्रह्मसूत्र पर वीरशैव भाष्य लिखा है। दोनों के बीच प्राय: ६०० वर्षों का अन्तर है। क्रियासार के कर्ता ने अपने ग्रन्थ को उक्त ब्रह्मसूत्र भाष्य का ही कारिकारूप व्याख्यान कहा है। यह ग्रन्थ वस्तुतः वेदागमों के आधार पर वीरशैव तत्त्व का प्रतिपादन करता है। इसमें २४ उपदेश हैं। प्रत्येकं अधिकरण में लिङ्गधारण के महत्त्व को बताया गया है। यह कृति शैव तथा वीरशैव सम्प्रदाय के लिए आकर ग्रन्थ के रूप में सम्मानित है।

शिवाद्वैतमञ्जरी

शिवाद्वैतमञ्जरी के रचयिता श्री स्वप्रभानन्द शिवाचार्य हैं। इनका भी स्थितिकाल १४०० ई. के लगभग है। इस कृति में ३ मञ्जरियाँ हैं। इनमें लिङ्गाङ्ग सामरस्यात्मक शिवाद्वैत सिद्धान्त का विषय प्रतिपादित है। १९३४ ई. में देवशिखामणि रामानुजाचार्य ने कन्नड़ भाषा में इस पर विस्तृत व्याख्या लिखी है। यह ग्रन्थ मैसूर पंचाचार्य मुद्रणालय से प्रकाशित हुआ है। अनेक विद्वान् स्वप्रभानन्द शिवाचार्य को कश्मीर का निवासी मानते हैं।

वीरशैवानन्दचन्द्रिका

वीरशैवानन्दचन्द्रिका के प्रणेता श्री मरितोंटदार्य (स्थिति काल १७५० ई.) हैं। इस ग्रन्थ के दो खण्ड हैं — वादकाण्ड और क्रियाकाण्ड। क्रियाकाण्ड का प्रकाशन नहीं हुआ है और पहला खण्ड वादकाण्ड ही प्रकाशित है। वादकाण्ड में कुल २४ प्रकरण हैं। इसमें चार्वाक, बौद्ध, जैन, कपिल (सांख्य), जैमिनि (मीमांसा) गौतम (न्याय), शंकर, रामानुज, माध्व, शाक्त आदि दार्शनिक मतों

की समीक्षा करके वीरशैव सिद्धान्त का प्रतिपादन शास्त्र मर्यादा के अन्तर्गत किया गया है। इस ग्रन्थ की आकर्षक संवाद-शैली और विचार प्रस्तुतीकरण विद्वानों को विस्मित कर देता है। वीरशैवों के लिए यह ग्रन्थ अमूल्य है। भारतीय दर्शनाभ्यासी क्रियाविद् जिज्ञासु विद्वान् अध्येता इस ग्रन्थ का अनुशीलन अत्यन्त मनोयोगपूर्वक करते हैं। इसके सभी प्रकरणों में कुल मिलाकर प्राय: ढाई हजार श्लोक हैं। इसमें वीरशैवधर्म का स्वरूप, गुरु जंगम तत्त्व निरूपण, लिङ्गार्चन क्रम आदि तत्त्वों का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। 'वादकाण्ड' का प्रकाशन हुब्बल्ली मूरुसाविर मठ द्वारा १९३६ ई. में किया गया है और इसका कन्नड़ अनुवाद सिरसी के आस्थान महाविद्वान् श्रीगुरुशान्त शास्त्री द्वारा किया गया है। वीरशैव सम्प्रदाय में यह ग्रन्थ आदरणीय और लोकप्रिय है।

अनुभवसूत्रम्

अनुभवसूत्र का प्रणयन श्री मग्गेमाई देवरु (स्थितिकाल - प्राय: १४३० ई.) हैं। ये विजयनगर-सम्राट् प्रौढ़ देवराय के समकालिक थे। 'अनुभवसूत्र' वीरशैव सिद्धान्त का प्रतिपादक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'वातुलोत्तरतन्त्रे शिवानुभवषट्स्थलनिर्णय:' — यह लिखा हुआ यहाँ प्राप्त होने के कारण प्रतीत होता है कि 'अनुभवसूत्र' वातुलतन्त्र का उत्तरभाग है। इसमें वीरशैव सिद्धान्त का समग्र निरूपण हुआ है। इसका प्रकाशन १९८३ ई. में हुआ है।

विशेषार्थप्रकाशिक

'विशेषार्थप्रकाशिक' के कर्ता श्री मग्गेय महादेवरु (स्थितिकाल-१४३०ई. के लगभग) हैं। इस ग्रन्थ में ५ अधिकरण और ४७६ कारिकाएँ हैं। इस ग्रन्थ का विषय-षट्स्थल ब्रह्मोपदेश, शिवलिङ्गार्चन, वीरशैव अनुष्ठान आदि हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ षट्स्थल की विशेषताओं का भी प्रतिपादन हुआ है।

श्री मग्गेय महादेवरु ने अपनी एक कृति में – 'प्रभुगीता-प्रभुदेव' वचनों का संस्कृत में अनुवाद किया है। संस्कृत भाषा में वचन साहित्य का अनुवाद करने का श्रेय प्रथमत: इन्हें ही प्राप्त है।

कैवल्यसार:

'कैवल्यसार:' के कर्ता श्रीमरितोंटदार्य (१७५० ई.) हैं। इस ग्रन्थ में अङ्गस्थल और लिङ्गस्थल नामक दो विभाग हैं और कुल मिलाकर १२ प्रकरण

तथा ६८७ श्लोक हैं। 'सिद्धान्तशिखामणि' में निरूपित १०१ स्थलों का निरूपण यहाँ भी यथावत् किया गया है। वीरशैव तत्त्वों का सरल-सुबोध-सुन्दर शैली में प्रतिपादन करने के कारण यह कृति विशेष रूप से सराहनीय है। मैसूर प्राच्य विद्या संस्थान द्वारा देवनागरी लिपि में इसका प्रकाशन १९८८ ई. में किया गया है।

तत्त्वप्रकाशः

'तत्त्वप्रकाश' के लेखक श्री भोजदेव (स्थितिकाल - १०६०ई.) हैं। यह ग्रन्थ शैवसिद्धान्त के लिए प्रमाणीभूत है। षडक्षर कवि ने इसके कर्ता भोजदेव की प्रशंसा में लिखा है —

नुतिपेम मिश्रित वीरशैव शरदी श्री सोमनं ।
सतताराधित शंकरो पदपदां श्रीभोजनं ।।

इस कृति की विशेषता यह भी है कि इसमें शिवादिक्य संहिता के तैंतीस तत्त्व और षड्द्वै आदि वीरशैव सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं।

पण्डिताराध्यचारित्रम्

पालकुरिके सोमनाथाराध्य द्वारा मूलतः तेलुगू भाषा में विरचित इस कृति का संस्कृत में अनुवाद गुरुराज कवि ने १५०० ई. में किया है। इसमें पाँच प्रकरण और ७७६२ श्लोक हैं। पण्डिताराध्य के समग्र जीवन परिचय के साथ ही आनुषंगिक रूप से गुरुलिङ्ग जङ्गमादि अष्टावरण तत्त्वों का प्रतिपादन भी इसमें हुआ है। पूरे ग्रन्थ में यत्र-तत्र वीरशैव सिद्धान्त का निरूपण प्राप्त होता है।

वेदान्तसार-वीरशैव-चिन्तामणिः

श्री नंजणाचार्य ने 'वेदान्तसारवीरशैवचिन्तामणि' नामक ग्रन्थ की रचना १७वीं शताब्दी ई. में की है। इस ग्रन्थ का पूर्वभाग उपलब्ध नहीं है। उत्तरभाग सोलापुर (शोलापुर) ग्रन्थमाला द्वारा १९०८ ई. में प्रकाशित हुआ है। उत्तरभाग में २१ प्रकरण और २८१२ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में ब्रह्मविद्याधिकार का समर्थन, वीरशैव शब्द का निर्वचन, अतिवर्णाश्रम स्वरूप, लिङ्गधारण का महत्त्व, षट्स्थल निरूपण तथा अन्त्येष्टि विधि आदि विषयों का सप्रमाण निरूपण हुआ है।

वीरमाहेश्वराचारसङ्ग्रहः

'वीरमाहेश्वराचारसंग्रहः' नामक ग्रन्थ की रचना श्री नीलकण्ठ नागनाथाचार्य ने १५०० ई. के आसपास की है। इस ग्रन्थ में ७७ अध्याय और २१२२ श्लोक हैं। वीरशैवधर्मशास्त्र का यह एक प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। शिवाधिकार, पञ्चाक्षरमाहात्म्य, षट्स्थलक्रम, व्यासमुजस्तम्भन, शिव पञ्चविंशतिलीला सहित अनेक उपाख्यान इसमें वर्णित हैं। इस ग्रन्थ का प्रकाशन शोलापुर की वारद ग्रन्थमाला द्वारा किया गया है।

अनादिवीरशैवसारसङ्ग्रहः

इस ग्रन्थ के कर्ता सम्पादनेय सिद्धवीर शिवयोगी हैं। इनका स्थितिकाल १६०० ई. के आसपास माना जाता है। ये कर्नाटक राज्य के तुमकूर जिले के गूलर नामक स्थान के निवासी हैं। इस ग्रन्थ के प्रणेता सम्पादनेय सिद्धवीर शिवयोगी को 'वीरशैव षट्स्थलमार्गस्थापनाग्रण्य' विरुद से विभूषित किया गया है। इस ग्रन्थ में २७ प्रकरण और ३३८३ श्लोक हैं। सोलापुर ग्रन्थमाला में १९०७ ई. में यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित है। इसमें अनादि भक्तस्थल से ऐक्यस्थल तक कुल २७ स्थलों का निरूपण किया गया है।

वीरशैवधर्मशिरोमणिः

इसके लेखक श्री षडक्षर मन्त्री हैं। इनका स्थितिकाल १७४०ई. के लगभग माना जाता है। परमेश्वरागम के सारांश को १०० सूत्रों में निबद्ध किया गया है। प्रत्येक सूत्र के लिए श्लोक का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में १०० श्लोक हैं। श्री निर्वाण मन्त्री ने संस्कृत में इसकी व्याख्या लिखी है। इस ग्रन्थ की प्रतिपादन शैली अनुपम है। यह ग्रन्थ चार परिच्छेदों में विभक्त है जो क्रमशः लिङ्गधारण वैधिकरण के साधन, कर्म, ज्ञान और योग हैं।

वीरशैवसदाचारसङ्ग्रहः

इस ग्रन्थ के कर्ता और कर्तृत्वकाल के सम्बन्ध में कहीं कोई सूचना नहीं मिलती। इस ग्रन्थ में शैवागमों के अनेक विषयों का निरूपण किया गया है किन्तु ग्रन्थकार ने कहीं भी अपना नाम, परिचय, कालादि का उल्लेख नहीं किया है। इसमें कुल पन्द्रह प्रकरण और ६९८ श्लोक हैं। आचार्यों की उत्पत्ति, शाखा-

प्रवर, शैवभेद, वीरशैव लक्षण, गर्भाधानादि संस्कार, वीरशैव दीक्षा, शिष्यवर्ग, पुत्रवर्ग, सम्प्रदाय, गुरुचरवर्गादि सहित पट्टाभिषेकादि संस्कारों का वर्णन किया गया है।

वीरशैवान्वयचन्द्रिका

'वीरशैवान्वयचन्द्रिका' के रचनाकार आराध्य वीरशैव शास्त्री हैं। इनका स्थितिकाल अज्ञात है। इस ग्रन्थ में पाँच प्रकरण तथा ३५५ श्लोक हैं। इसमें पञ्चाचार्योत्पत्ति सहित वीरशैव विचारों का निरूपण किया गया है।

शिवाधिक्यशिरोमणिः

इसके कर्ता सोसले रेवणाराध्य (स्थितिकाल - १८००ई.) हैं। इस ग्रन्थ में बारह उपदेश तथा सौ प्रश्न और उनके उत्तर दिये गए हैं। शिवाधिक्य जैन, बौद्ध, चार्वाक, कापालिक आदि के विषय में प्रश्न और उत्तर हैं। इस ग्रन्थ में उल्लेख है कि श्री रेणुकाचार्य द्वारा श्री शङ्कराचार्य को श्रीचन्द्रमौलीश्वर लिङ्ग प्रदान किये जाने तथा अन्य विषयों का भी उल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ पर लिखी टिप्पणी भी मिलती है।

वीरशैवोत्कर्षप्रदीपिका

इस ग्रन्थ के प्रणेता गुब्बिचन्नबसवेश्वर हैं। इनका स्थितिकाल ज्ञात नहीं है। १६० श्लोकों के कलेवर वाले इस ग्रंथ में वीरशैव धर्म की श्रेष्ठ कथा का प्रमाणपूर्वक उल्लेख किया गया है।

वीरशैवाचारप्रदीपिका

इस ग्रन्थ के रचनाकार गुरुसिद्धदेव हैं। इनके भी स्थितिकाल का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इस ग्रन्थ में ३८ खण्ड और १५५८ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ का विशिष्ट महत्त्व इसलिए है कि यह वीरशैवों के लिए धर्मशास्त्र का ग्रन्थ है। इसमें शिवदीक्षा, गुरु-शिष्य लक्षण, पञ्चाक्षर मन्त्र आदि का विशद निरूपण है।

माचिदेवमनोविलासः

इस ग्रन्थ को श्रीमदानन्द बसवलिङ्ग शिवयोगी ने लिखा है। इनका स्थितिकाल १४६० ई. है। इसमें ३४ अध्याय हैं। वीरशैवाचार, शैवभेद, लिङ्गधारणमाहात्म्य, अष्टावरण स्वरूप आदि इसके विशिष्ट प्रतिपाद्य विषय हैं।

वीरशैवाचारकौस्तुभः

'वीरशैवाचारकौस्तुभ' के रचयिता श्री मानप्प पण्डित (स्थितिकाल- १७०० ई.) हैं। इस ग्रन्थ में ४० अध्याय हैं। यह ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त है — क्रियाखण्ड, ज्ञानखण्ड, मुक्तिखण्ड। क्रियाखण्ड में वीरशैवों के लिए ग्राह्यविधि, ज्ञानखण्ड में षट्स्थलसिद्धान्त और मुक्तिखण्ड में लिङ्गाङ्ग सामरस्य के विषय में उल्लेख किया गया है। वीरशैव सिद्धान्त तथा धर्मशास्त्र के बृहद् ग्रन्थ के रूप में इसकी पर्याप्त प्रसिद्धि है।

वीरशैवधर्म में आगमिक कार्यों को पूर्ण करने से पहले की जाने वाली क्रिया विधियों की जानकारी सम्प्रदायगत रूप से अति प्राचीन काल से ही है। इनके प्रतिपादक ग्रंथों में क्रियासार, वीरशैवसदाचारसंग्रह, वीरशैवाचारकौस्तुभ प्रमुख हैं। वीरशैवाचारकौस्तुभ के आधार पर इन क्रियाविधियों का ज्ञान कराने वाले वैदिक आगम ग्रन्थ अधोलिखित हैं —

१. गर्भाधानादिविधि : महान्तशास्त्री।

२. गृहप्रवेश, पट्टाधिकार तथा लिङ्गधारण विधि : अज्ञातकर्तृक।

३. वीरशैवदीक्षाविधि : वीरसंगप्प तथा करिबसव शास्त्री (१८८७ई.)।

४. विवाहविधि : गुरुशान्त शास्त्री और सदाशिव शिवाचार्य।

५. ब्रह्मोपदेशविधि : उमचगि शङ्कर शास्त्री।

६. वीरशैवदीक्षाविधि : श्री सदाशिव शिवाचार्य।

७. वीरशैवपूर्वप्रयोगरत्नम् : श्री एम. जी. नंजुंडाराध्य।

८. वीरशैव उत्तरप्रयोग : श्री एम. जी. नंजुंडाराध्य।

९. वैदिक षट्स्थललिङ्गपूजाविधि : श्री एम. जी. नंजुंडाराध्य।

लिङ्गधारणचन्द्रिका

इसके लेखक नन्दिकेश्वर शिवाचार्य (स्थितिकाल - १७०० ई. के लगभग) हैं। इस ग्रन्थ में वेदोपनिषत् एवम् आगमों के प्रामाणिक अंशों को उद्धृत करते हुए लिङ्गधारण को वेदोक्त अतः वैदिक प्रमाणित किया गया है। प्रतिपादन की शैली दार्शनिक है। वाराणसी के पण्डित शिवकुमार मिश्र ने संस्कृत में तथा सिरसी के आस्थान महाविद्वान् गुरुशान्त शास्त्री ने कन्नड में इसकी टीका की है। लिङ्गैक्य

एम. आर. साखरे जी ने अंग्रेजी में विस्तृत प्रस्तावना लिखकर इसे प्रकाशित किया है। यह ग्रन्थ काशीस्थ जंगमवाडी मठ द्वारा प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी की हिन्दीभाषा में लिखी टिप्पणी के साथ १९८८ ई. में प्रकाशित हुआ है।

सद्याख्यानपञ्चश्लोकी

इसे केलदि बसवराज ने (१७४० ई.) निर्मित किया है। ये केलदी संस्थान के सामन्त राजा थे। इन्होंने अनेक विद्वानों को आश्रय दिया था। श्रीमरितोंटदार्य, मानप्प पण्डित तथा निर्वाण मन्त्री इनके आस्थान कवि थे। केलदि बसवराज ने 'शैवसञ्जीविनी' नामक संस्कृत ग्रन्थ की भी रचना की है। श्लोकबद्ध इस ग्रन्थ में शिव द्वारा सर्वोत्तमता का प्रतिपादन किया गया है। मैसूर के एम. बसवलिङ्ग शास्त्री ने इसे परिष्कृत करके १९१२ ई. में प्रकाशित किया है।

श्रुतिसारभाष्यम्

इस कृति के निर्माता शिवपूजा शिवलिङ्ग शिवयोगीन्द्र (१८००ई.) हैं। ये द्रविड़ देश के कुम्भकोणम् मठ के निवासी थे और महान् विद्वान् थे। इनकी इस कृति में (जैसा कि ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट है) चारों वेदों का सारभूत ७५ मन्त्रों का सङ्कलन करके उनपर आगम-पुराणों के आधार से वीरशैव व्याख्यान किया गया है। श्री शिवयोगीन्द्र द्वारा इसके अतिरिक्त मोक्षाधिकार, षडक्षरस्तोत्र आदि ग्रन्थों की भी रचना किए जाने की सूचना मिलती है। श्रीबसवलिङ्गस्वामी ने इस ग्रन्थ (श्रुतिसारभाष्यम्) का प्रकाशन १९१३ ई. में किया है।

ब्रह्मसूत्रवृत्तिः

इस ग्रन्थ के प्रणेता लिङ्गैक्य उमचगि शङ्कर शास्त्री (१९३०ई.) हैं। शास्त्री जी ऐसे अन्तिम विद्वान् कर्ता हैं जिन्होंने ब्रह्मसूत्रों पर वीरशैवसिद्धान्तभाष्य लिखा है। शास्त्री जी द्वारा इस ग्रन्थ का प्रणयन श्रीनीलकण्ठ शिवाचार्य द्वारा विरचित क्रियासार को आधार बनाकर किया गया है। क्रियासार के मूल में भी ब्रह्मसूत्र ही हैं। सद्धर्म सिंहासन, उज्जयिनी (उज्जैन) के ज्ञानगुरु विद्यापीठ द्वारा इस ब्रह्मसूत्रवृत्ति ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा चुका है। इसमें विद्वानों द्वारा इस वीरशैवसिद्धान्तभाष्य की प्रशंसा किए जाने का उल्लेख भी शास्त्री जी ने किया है।

शिवाद्वैतपरिभाषा

श्री नीलकण्ठ शिवाचार्य (१९३९ई.) ने वीरशैव सिद्धान्त के इस ग्रन्थ की रचना की थी।

शिवाद्वैतदर्पण

'शिवाद्वैतदर्पण' के रचयिता श्री शिवानुभव शिवाचार्य (१९०० ई.) हैं। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त भी इन्होंने एक अन्य ग्रन्थ की भी रचना की है। वे एक विद्वान् लेखक थे और हूलिमठ परम्परा के थे। इनके द्वारा विरचित दोनों ग्रन्थ वीरशैवसिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

दुर्वाददूरीकरणम्

पं. काशीनाथ शास्त्री ने १९१८ ई. में इसकी रचना की है। काशी के पं. कालिकेश्वरदत्त शर्मा ने अपने ग्रन्थ 'शैवब्राह्मणोत्पत्ति' में लिङ्गधारी वीरशैव को अवैदिक कहा है। इस विषय में पं. काशीनाथ शास्त्री और पं. कालिकेश्वरदत्त शर्मा के बीच परस्पर दीर्घकाल तक पत्राचार हुआ। यह पत्राचार सङ्कलन, वीरशैव धर्म को वैदिक आधार प्रदान करने के लिए एक प्रामाणिक ग्रन्थ हो गया है।

वीरशैवेन्दुशेखर

इस ग्रन्थ के लेखक पं. सदाशिव शास्त्री (१९३२ ई.) हैं। रम्भापुरी जगद्गुरु पीठ के अध्यक्ष जगद्गुरु शिवानन्द राजेन्द्र शिवाचार्य जी ने इस ग्रन्थ को सम्पूर्णता प्रदान की। इस ग्रन्थ में वेदोपनिषदों के आधार पर वीरशैवसिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन जंगमवाड़ी मठ, काशी द्वारा १९३२ ई. में हुआ है।

शिवसिद्धान्तचन्द्रिका

इस कृति की रचना हूली नीलकण्ठ शिवाचार्य ने की है। इनका समय १९३९ है। इस ग्रन्थ की विशेषता है कि इसमें सम्राट सत्तेन्द्रचोल को उनके गुरु चिद्घन शिवाचार्य जी द्वारा प्रबोधित शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। यह एक प्रश्नोत्तर ग्रन्थ है और इसमें चार परिच्छेद हैं।

डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य ने (१९६१ई.) वीरशैवसिद्धान्त के विषय में तीन ग्रन्थ लिखे हैं — शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शनम्, भगवद्गीता वीरशैवभाष्यम् और

शरणगीता। इनमें से 'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शनम्' में पाँच अध्याय हैं। श्री सिद्धप्पाराध्य के इस शोध प्रबन्ध पर उन्हें पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई है। इसमें वीरशैवसिद्धान्त अत्यन्त व्यवस्थित और सविस्तर निरूपित हुआ है। वीरशैव का शास्त्रीय अध्ययन करने वालों के लिए यह एक आकर ग्रन्थ है। इस संस्कृत शोध प्रबन्ध का प्रकाशन जगद्‌गुरु रम्भापुरी संस्थान द्वारा १९६१ ई. में किया गया है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पर वीरशैव भाष्य लिखने का प्रयत्न पहले विद्वान् परमपूज्य श्री गौरीशङ्करस्वामी और पूज्य जगदाचार्य विरूपाक्ष वाडेयर ने किया था किन्तु उसे पूर्ण न कर सके। बाद में डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य ने सफलतापूर्वक इस कार्य को पूर्ण किया। भगवद्‌गीता में वीरशैवतत्त्व का उन्मीलन उन्होंने प्रमाणपूर्वक और तर्कसम्मत रीति से किया है और विद्वानों ने प्रभावित होकर इसकी सराहना की है। यह भाष्य सरल संस्कृत भाषा और रोचक शैली में लिखा गया है। डॉ. सिद्धप्पाराध्य की तृतीय रचना 'शरणगीता' में शिवशरणों के वचनों का सुन्दर संस्कृत अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इसे चित्रदुर्ग के ब्रह्ममठ ने प्रकाशित किया है।

प्रकाण्ड पण्डित और बहुभाषाविद् पूज्य जगदाचार्य विरूपाक्ष वाडेयर जी चौडय्या दानपुर के मठाधीश्वर थे (स्थितिकाल-१८८८ से १९६० ई.)। इन्होंने संस्कृत के अतिरिक्त कन्नड़, हिन्दी और मराठी में प्राय: ५० पुस्तकें लिखी हैं। इनकी संस्कृत में लिखी पुस्तकें इस प्रकार हैं —१. शास्त्रबोध: २. लिङ्गाङ्गिधर्मप्रवेशिका ३. वेदान्तसारचन्द्रिका ४. दुर्वादनिवारणम् ५. तुलनात्मक: तत्त्वविषय: ६. संस्कृतसाहित्यं तच्छिक्षणपद्‌धतिश्च ७. निरुक्तभाष्यम् ८. गीतामृतभाष्यम् ९. तत्त्वसिद्धान्त: १०. गुणपरिवर्तनभाव: ११. पद्‌यरूपनिघण्टु: (शब्दकोश:) १२. एकमूर्तेस्त्रयो भेदा: १३. भविष्यपुराणोक्त-व्यासभुजस्तम्भनमुक्ति:।

सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा:

इस कृति के लेखक गुलेदगुड्ड के डॉ. चन्द्रशेखर शर्मा हिरेमठ हैं। यह प्रबन्ध १९८९ ई. में प्रकाशित है। वर्तमान में डॉ. चन्द्रशेखर शर्मा जी जङ्गमवाड़ी मठ, काशी के छियासीवें पीठाधीश्वर हैं और जगद्‌गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी के नाम से लोकविश्रुत हैं। अपनी साधना, विद्याव्यसन और तपश्चर्या से महिमामण्डित महास्वामी की वीरशैव सम्प्रदाय में महती प्रतिष्ठा है और आप

काशी की आध्यात्मिक विभूतियों में अग्रगण्य हैं। सर्वदर्शनतीर्थ, वेदान्ताचार्य, विद्यावारिधि आदि उपाधियों से विभूषित महास्वामी जी का यह शोध प्रबन्ध सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी द्वारा आदरपूर्वक स्वीकृत किया गया है। इस महत्त्वपूर्ण कृति की विशेषता है कि यह वीरशैव सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाला प्रामाणिक प्रकरण ग्रन्थ है।

'सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा' भारतीय षड्दर्शन का एक गौरवग्रन्थ है। इस शोध प्रबन्ध में कुल आठ अध्याय हैं जिनमें वीरशैवसिद्धान्त की ऐतिहासिकता, सिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थ का सर्वाङ्गपरिचय, ईश्वरस्वरूपविमर्श, सृष्टिमीमांसा, बन्धमोक्षस्वरूपविमर्श, दार्शनिक सिद्धान्तसमीक्षा, अष्टावरणविमर्श, पञ्चाचार-समीक्षा आदि विषय विवेचित हैं। इसमें विषय का प्रतिपादन प्राञ्जल संस्कृत भाषा में तर्कसम्मत शैली से किया गया है और इसका कलेवर दार्शनिक परिभाषाओं से संवलित है। इस शोधप्रबन्ध की विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यह ग्रन्थ, जङ्गमवाड़ी मठ, काशी से १९८९ में प्रकाशित हुआ है।

जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी द्वारा विरचित 'शक्तिविशिष्टाद्वैत' नामक प्रबन्ध सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा विद्यावाचस्पति (डी. लिट्.) उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया है। (१९९२ई.)। पूज्य महास्वामीजी द्वारा संस्कृत के अतिरिक्त कन्नड़, हिन्दी और मराठी भाषाओं में भी अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी है जिनमें सिद्धान्तशिखामणि, अष्टावरणविज्ञान, प्रवचनप्रभा, काशी जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य आदि प्रमुख हैं।



अध्याय ११

वीरशैव की संस्कृत में विरचित कतिपय साहित्यिक कृतियाँ

व्यासोक्त बसवपुराण

इस ग्रन्थ के कर्ता का परिचय नहीं प्राप्त होता है। बसवपुराण में ४२ अध्याय हैं। ग्रन्थ के अन्त में प्रदत्त पुष्पिका है — 'श्री बादरायणमहर्षिप्रणीते श्रीबसवेश्वरपुराण (स्वरूप) ग्रन्थे परमरहस्ये स्कन्दागस्त्यसंवादे------।'

प्रभुलिङ्गलीला

इसके कर्ता का परिचय अप्राप्त है। यह वस्तुतः मूलकन्नड ग्रन्थ 'प्रभुलिंगलीले' का संस्कृत अनुवाद है और इसके अन्त में 'व्यासकृतभविष्यपुराणान्तर्गत' उल्लिखित है।

काशकृत्स्नधातुः

यह, श्री चन्नवीर द्वारा विरचित कन्नड़-अर्थ से भरा हुआ संस्कृत धातु पाठ का एक ग्रन्थ है। कुछ वर्ष पूर्व डॉ. ए. एस. नरसिंह द्वारा सम्पादित होकर काशी से प्रकाशित हुआ है। इसके प्रत्येक खण्ड में, 'चन्नवीरकृतकाशकृत्स्नधातु-कर्नाटकटीकायां परस्मै भाषालेखकपाठकश्रोतृणां संस्कृतार्थप्रकाशकं भूयात्' — ऐसा उल्लेख है।

विवेकचिन्तामणि : (लिङ्गराजीयम्)

श्री नृसिंहसूरि ने प्रायः १५०० ई. में श्री निजगुण शिवयोगी द्वारा कन्नड़भाषा में लिखित 'विवेकचिन्तामणी' नामक (कन्नड़-विश्वकोश) प्रसिद्ध कृति का संस्कृत में अनुवाद किया। यही 'विवेकचिन्तामणिः' या 'लिङ्गराजीयम्' के नाम से विख्यात है। इस महान् कृति का अनुवाद तमिल और मराठी भाषाओं में भी हुआ है। इस प्रकार यह ग्रन्थ कन्नड़, संस्कृत, तमिल और मराठी में उपलब्ध

है। संस्कृत-अनुवादक श्रीनृसिंहसूरि के इस 'लिङ्गराजीयम्' के विषय में यह श्लोक उक्त ग्रन्थ में ही प्राप्त होता है—

श्रीलिङ्गराजीयमुमाधवस्य
मुदावहं पण्डितभावनीयम् ।
विवेकचिन्तामणितन्त्रसारं
नृसिंहसूरिग्रथितं लिखामि ।।

बसवेशविजयमहाकाव्यम्

इस महाकाव्य के रचयिता श्री शङ्कराराध्य हैं। इस महाकाव्य में ४६ आश्वास और कुल ४८१३ पद्म हैं। इस महान् काव्यकृति में नायकवंशप्रशंसा, बसवावतरण, बसवोदय, विवाह, भावनासिद्धि, शिवभक्तिकथावरणी आदि विषय वर्णित हैं। आश्वासों के अन्त में यथायोग—'इति शङ्कराराध्यस्य कृतौ बसवपुराणो बसवराजविजयो नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्याय:' जैसी पुष्पिका प्राप्त होती है।

प्रभुलीलाकाव्यम्

इस काव्य के कर्ता श्री गुरुसिद्ध योगी हैं। इसकी रचना १७०० ई. के आसपास हुई है। इसमें ८सर्ग और ६८३ पद्म हैं। इसमें विविध संस्कृत छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस काव्य की रचना चामरस कृत प्रभुलिङ्गलीला को आधार बनाकर की गयी है।

शिवतत्त्वरत्नाकरः

इस ग्रन्थ के प्रणेता केलदि के बसवभूपाल (१६८४-१७००ई.) हैं। यह ग्रन्थ 'भारतीय-विश्वकोश' के नाम से विख्यात है। इसमें ९ खण्ड (कल्लोल) हैं। प्रत्येक कल्लोल, तरङ्गों में विभक्त है। इन तरंगों में भारतीय शास्त्रों का ज्ञान-भाण्डार सन्निहित है। कल्लोलों के अन्त में इस प्रकार पुष्पिका दी गयी है—'श्रीमत्केलदिबसवराजेन्द्रविरचितवेदागमान्तर्गतविविधविद्या-तन्त्रसारभूते श्रीशिवतत्त्वरत्नाकरे नवमे कल्लोले षट्स्थलज्ञाननिरूपणं नाम नवमस्तरङ्गः।'

'शिवतत्त्वरत्नाकर' के अतिरिक्त बसवभूपाल की दो अन्य कृतियाँ भी पायी जाती हैं। प्रथम है —'सुभाषितसुरद्रुमः', जो एक बृहत्सुभाषितसङ्ग्रह है। द्वितीय है — 'सूक्तिसुधाकरः, जो संस्कृत-कन्नड़ भाषाओं का मिला जुला सूक्ति सङ्ग्रह है।

शैवरत्नाकरः

श्री ज्योतिर्नाथ (११६५ई.) ने इस ग्रन्थ की रचना की है। इस काव्य में १५ सर्ग हैं और इनमें शिवाधिक्य, लिङ्गोत्पत्ति, विभूतिमाहात्म्य, सद्‌गुरुलक्षण, दीक्षा, पञ्चाक्षरमाहात्म्य, लिङ्गधारणविधि, लिङ्गार्चनविधि आदि विविध विषय वर्णित है। यह काव्य १९०९ ई. में शोलापुर से प्रकाशित हुआ है।

कविकर्णरसायनम् (चोलभूपालीयम्)

इस महाकाव्य का प्रणयन महाकवि षडक्षरदेव (१६३६-१६८५) ने किया है। इस महाकवि को 'उभयभाषाविशारद' की उपाधि प्राप्त थी। 'कविकर्णरसायनम्' अथवा 'चोलभूपालीयम्' नामक इस महाकाव्य के केवल एक से बारह सर्ग ही उपलब्ध हैं। उपलब्ध सर्गों में जो कथावस्तु प्राप्त होती है तदनुसार विक्रमचोल के पुत्र मानकंजार के जामाता सुन्दरचोल का चरित वर्णित है। काव्य में सर्वत्र कवि की प्रतिभा दर्शनीय है। अलङ्कार-प्रयोग, संवादकौशल, पदरचना और छन्दोविन्यास की विशिष्टता उल्लेखनीय है। इस काव्य के प्रारम्भिक पाँच सर्गों पर वेंगणसन्दी नामक विद्वान् द्वारा की गयी संस्कृत टीका भी है। इस महाकाव्य का प्रकाशन मैसूर प्राच्य विद्या संशोधनालय से १९७५ई. में हुआ है।

षडक्षरदेव के द्वारा कन्नड़ में विरचित तीन महाकाव्य भी प्रसिद्ध हैं — राजशेखरविलास, शबरशंकरविलास और वृषभेन्द्रविजय। इनके अतिरिक्त इनके द्वारा रचित अन्य १८ काव्यों का भी उल्लेख मिलता है—

१. शिवाधिक्यरत्नावली
२. भक्ताधिक्यरत्नावली
३. शिवस्तवनमञ्जरी
४. नमश्शिवाष्टकम्
५. श्रीमदनादिसिद्धलिङ्गस्थलम्
६. वीरभद्रोदाहरणगद्यम्
७. शिवस्तोत्रसुमङ्गली
८. इन्दुधरस्तोत्रम्
९. शिवमानसस्तोत्रम्
१०. इष्टलिङ्गाष्टकम्
११. इष्टलिङ्गस्तवनम्
१२. बसवाष्टकम्
१३. नीलाम्बिकास्तोत्रम्
१४. तत्त्वत्रयस्तोत्रम्
१५. मङ्गलाष्टकम्
१६. षडक्षरमन्त्रस्तोत्रम्
१७. बसवेश्वर सुप्रभातस्थलम्
१८. वीरभद्रदण्डकम्

शिवयोगप्रदीपिका

इसके लेखक श्रीचन्न सदाशिव योगीन्द्र हैं। इनका स्थितिकाल १३०० ई. के आसपास है। इस पुस्तक में पाँच खण्ड और २८७ कारिकाएँ हैं। मन्त्र, लय, हठ और राज- ये चार प्रकार के योग और उनके लक्षण यहाँ उल्लिखित हैं और शिवयोग की श्रेष्ठता का विस्तृत प्रतिपादन है।

बसवाराध्य नामक एक कन्नड़ लेखक ने इसकी व्याख्या की है। श्री एन. आर. करिबसवशास्त्री द्वारा परिष्कृत होकर यह ग्रन्थ १९०३ ई. में प्रकाशित हुआ है।

शिवलिङ्गसूर्योदयः

इसके प्रणेता श्रीमल्लनाराध्य (१८००ई.) हैं। यह एक शान्तरस प्रधान नाटक है। इसके लेखक ने कन्दकूर के बसवेश्वर नामक मण्डलेश्वर के लिए इसका अङ्कन किया है। आम जनता में धार्मिक श्रद्धा और दैवभक्ति को जाग्रत करना ही इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है। नाटक के प्रारम्भ में नान्दी पद्य में श्रीशैलसिंहासनाधिपति वीरेश्वरस्वामी की स्तुति की गयी है। संस्कृत में उपलब्ध 'सूर्योदयप्रबोध' एवं 'चन्द्रोदय' प्रभृति नाटकों के समान ही इसकी भी कथावस्तु कामक्रोधादि आसुरी शक्तियों पर दैवी शक्तियों की विजय है।

श्रीबसवराजीयम्

इसके प्रणयनकर्ता कोट्टूर बसवराज हैं। यह एक वैद्यक ग्रन्थ हैं और इसमें २४ प्रकरण हैं। वैद्यकीय क्षेत्र में बसवराजीय एक अनुपम प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। आयुर्वेद के प्रौढ़ प्रशिक्षुओं के लिए यह सर्वोत्तम पाठ्य ग्रन्थ है। बसवराज को कलियुग का महर्षि चरक भिषगाचार्य माना जाता है। आन्ध्रप्रदेश में यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय है कि इसे घर-घर रखते हैं। इस ग्रन्थ पर तेलुगू भाषा में टीका भी की गयी है।

संस्कृतस्तवनमञ्जरी

इसके कर्ता 'अभिनव कालिदास' की उपाधि से विभूषित श्री बसप्पा शास्त्री (१८४३-१८९७ ई.) हैं। मैसूर के चामराजेन्द्र वाडेयर के आस्थान कवि (सभाकवि) श्री वसप्पा शास्त्री उभयभाषा कवि रहे हैं। ये संस्कृत नाटकों के श्रेष्ठ

अनुवादक भी थे। इसीलिए इन्हें अभिनव कालिदास कहा जाता था। संस्कृतस्तवनमञ्जरी के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं— त्रिषष्टिपुरातनगणस्तव, शिवाष्टकम्, अम्बाषोडशमञ्जरी, शिवभक्तिसुधारसतरङ्गिणी और आर्याशतकम् ।

बसववचनामृतम्

आस्थान विद्वान् एम. जी. नंजुंडाराध्य ने इसकी रचना की है। इसमें १०८ वचनों का संस्कृतरूपान्तर है। १९६६ ई. में बसवसमिति द्वारा इसका प्रकाशन किया गया है। श्री नंजुंडाराध्य के द्वारा मादरचन्नार्य (शूद्रचन्नार्थ) नामक एक भक्तिरसप्रधान नाटक की रचना की गयी है जिसमें एक शरण को विषयवस्तु बनाया गया है।

श्रीसिद्धलिङ्गविजयमहाकाव्यम्

इस महाकाव्य के रचयिता 'व्याकरणतीर्थ', 'साहित्यशिरोमणि' पं. बसवराज शास्त्री पगडदिन्नीमठ है। इन्होंने यडेयूर सिद्धलिङ्गेश्वर के जीवन चरित को संस्कृत में काव्य का स्वरूप प्रदान किया है। इस चरित्र प्रधान महाकाव्य में २६ सर्ग हैं। इसमें अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। शास्त्री जी की काव्यप्रतिभा, वर्णन कौशल और पाण्डित्य का अनुभव सहृदय पाठक इस महाकाव्य का रसास्वादन करके जान सकते हैं। संस्कृतभाषा पर इनका अपूर्व अधिकार था - यह बात महाकाव्य का अवलोकन करने से प्रमाणित होती है। इस महाकाव्य का प्रकाशन १९७१ ई. में हुआ है।

इस महाकाव्य के अतिरिक्त शास्त्री जी ने 'श्रीकुमारमहाशिवयोगीजीवनचरितम्' नामक कृति का भी निर्माण किया है। इस कृति में उन्होंने हानगल् कुमारशिवयोगी जी की जीवनी का संस्कृत में अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। संस्कृत सीखने वालों के लिएं शास्त्री जी ने १. संस्कृतप्रवेशः २. संस्कृतप्रकाशः ३. संस्कृतमार्गदर्शनम् और ४. व्याकरणदर्पणः आदि सरलपुस्तकों की रचना की है। ये सभी पुस्तकें जगद्गुरु गङ्गाधर धर्मप्रचारकमण्डल, मूरुसाविर मठ द्वारा १९७२ ई. में प्रकाशित की गई है। शास्त्री जी ने 'वीरशैवसदाचारसङ्ग्रहः' का भी सम्पादन अत्यन्त शास्त्रीय पद्धति से किया है। इस ग्रन्थ में १५ प्रकरण हैं। इस ग्रन्थ में शैवों के

लिए सदाचार की शिक्षा दी गयी है। वीरशैवों के लिए यह एक धर्मशास्त्र है। इसका प्रकाशन १९६४ ई. में मुरुसाविर मठ, हुबली द्वारा किया गया है।

शिवाद्यष्टकस्तोत्रमणिमाला

इस कृति के रचयिता पण्डित पर्वतशास्त्री कन्दगल मठ हैं। इन्होंने १९६४ ई. में इसे प्रकाशित कराया है। इस स्तोत्र ग्रन्थ में दक्षिणामूर्ति, संगमेश्वर, श्रीविजयमहान्तशिवयोगी, शरणबसव, नागभूषणशिवयोगी, गुरुमहान्तेश्वर, मल्लिकार्जुन, सिद्धरामेश्वर, वीरेश्वर, अम्बा और कोहूरु बसवेश्वर के सम्बन्ध में स्तोत्र लिखित है। अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है और इसकी भाषा प्राञ्जल तथा शैली प्रौढ़ है। शास्त्रीजी संस्कृत के श्रेष्ठ कवि हैं। इन्होंने 'विजयमहान्तेशचम्पू' 'करडीशचम्पू' और 'सुभाषितसुधाझरी' आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की है। शिवाद्यष्टकस्तोत्रमणिमाला के साथ ही सुभाषितसुधाझरी का भी प्रकाशन १९६४ ई. में मुसाविर मठ द्वारा कराया गया है।

श्रीमत्कुमारगीता

गदग, कर्नाटक निवासी, त्रिभाषाकवि और उभयगायनाचार्य डॉ. पुट्टराज कविगवाई ने इस ग्रन्थ की रचना की है। इस गीता-ग्रन्थ में आठ अध्याय और ८६८ श्लोक हैं। ये सभी पद्य अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध हैं। इस कृति में वीरशैव तत्त्व, गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में वर्णित हुआ है। वीरशैव के धर्ममन्दिर में प्रवेश के लिए यह ग्रन्थ वस्तुतः मार्ग (दर्शक) दीपक है। इसका कन्नड़ भाषा में अनुवाद पं. शङ्कर शास्त्री जी ने किया है। वीरेश्वरपुण्याश्रम, गदग द्वारा इस गीता का प्रकाशन किया गया है। इसके अतिरिक्त डॉ. पुट्टराज कवि ने श्रीलिङ्गसूत्रम्, श्रीरुद्रतात्पर्यम्, श्रीकुमारविलाास-काव्यम्, पञ्चाक्षर सुप्रभातम् आदि कई संस्कृत कृतियों की रचना की है।

श्रीपुट्टराजकवि ने अपनी काव्यकृतियों से यश प्राप्त करने की बात रूपक के माध्यम से अत्यन्त साहित्यिक शैली में व्यक्त की है —

अष्टादशवयःप्राप्ते त्रिभाषाकविताङ्गनाः ।
विवाहिता मया लोके यशःसन्तानमाप्तवान् ।।

अर्थात्, अठारहवर्ष की आयु प्राप्त हो जाने पर मेरे द्वारा त्रिभाषाकविताकामिनियों का विवाह किया गया (और फिर उनसे) यश नामक सन्तान प्राप्त किया गया।

कणादसङ्ग्रहविवरणम्

इसके लेखक केलदी नंजराज (१७००ई.) हैं। यह वैशेषिक दर्शनशास्त्र का ग्रन्थ है। इसमें सप्तपदार्थों (द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, सम्भव और अभाव) का विवरण निरूपित है। इसमें पदार्थों की संख्या के अनुरूप ही सात अध्याय हैं।

केलदी नञ्जराज के द्वारा विरचित 'संगीतगङ्गाधर' (अथवा, शिवाषट्पदी) नामक ग्रन्थ भी मिलता है। इसमें पटलों सहित २४ अध्याय हैं। इस ग्रन्थ में सुन्दर शैली में शिव-पार्वती का वर्णन किया गया है।

वृत्तरत्नावली

इसके प्रणेता देवलापुर के श्री नंजुंडकवि हैं। उन्नसवीं शताब्दी ई. के श्रेष्ठ कवियों में से यह एक हैं। वृत्तरत्नावली एक स्वतंत्र (मौलिक) संस्कृत ग्रन्थ है। छन्दःशास्त्र को निरूपित करने वाले ग्रन्थों में एक है। इस अनुपम ग्रन्थ में १२६ वृत्तों का सोदाहरण निरूपण किया गया है। प्रत्येक छन्द को 'सूत्र' बताकर उसका विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रौढ़ ग्रन्थ की शैली रोचक है। इस पर पण्डितों ने संस्कृत में टिप्पणी भी लिखी है।

ज्ञानशतकम्

'ज्ञानशतकम्' के कर्ता श्री सर्पभूषण शिवयोगी (१८०० ई.) हैं। सर्पभूषण शिवयोगी उभयभाषा कवि हैं। ज्ञानशतकम् में १२ अध्याय और १२१ श्लोक हैं। इसमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का निरूपण किया गया है। विविध छन्दों से युक्त इस कृति में वीरशैवतत्त्वों के साथ ही बीच-बीच में अद्वैततत्त्वों का भी निरूपण मिलता है। विद्वान् नंजुंडाराध्य द्वारा इसका तात्पर्य लिखकर सम्पादन किया गया और १९७८ ई. में सर्पभूषण शिवयोगीश्वर मठ द्वारा प्रकाशित किया गया है।

विद्यावाचस्पति श्रीशम्भुलिङ्गेश्वरविजयचम्पू

इसके लेखक 'विद्यावाचस्पति' उपाधि से विभूषित महान् कवि पं. पण्डरीनाथाचार्य गलगली हैं। उन्होंने १९८२ ई. में इस चम्पू की रचना की। पं. पण्ढरीनाथ जी बीजापुर ब्रह्मन्मठ के पट्टाध्यक्ष हैं। वे महान् तपस्वी हैं। कन्नड़ और संस्कृत भाषा में ग्रन्थों की रचना करके इन्होंने विपुल ख्याति अर्जित की है।

इस चम्पू काव्य में द्वादश (१२) तरङ्ग हैं। गद्य-पद्य-मय काव्य को चम्पू कहा जाता है। इस चम्पू काव्य का गद्य बाण और दण्डी के गद्य-सदृश उच्चकोटि की प्रौढ़ि से युक्त हैं। इस कृति को राष्ट्रस्तर पर प्रशस्ति प्राप्त हुई है। इसके विषय में उल्लेख मिलता है —

शम्भुलिङ्गशिवाचार्ये ज्ञानमेरुर्महागुरुः ।
जङ्गमज्ञानकोशोऽयं भाति विद्यास्वयंवरः ।।

इस चम्पूकाव्य का प्रकाशन बीजापुर (कर्नाटक) से १९८२ ई. में हुआ है।

बसवेश्वर शतकम् (सटीकम्)

डॉ. मल्लिकार्जुन परड्डी ने इस शतक की रचना की है। डॉ. परड्डी कन्नड़, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के ज्ञाता विद्वान् हैं। 'संस्कृत में शतक साहित्य' नामक शोधप्रबन्ध पर इन्हें पी-एच.डी. की उपाधि १९८४ ई. में प्राप्त हुई है। १९९०ई. के नवम विश्व संस्कृत सम्मेल्लन (मेलबोर्न, आस्ट्रेलिया) में इन्होंने 'गीता एवं सिद्धान्त' विषयक शोधनिबन्ध प्रस्तुत किया। ये एक अच्छे कवि हैं और इनकी संस्कृत कवितायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं। 'बसवेश्वरशतकम्' चुने हुए १०१ वचनों का संस्कृतानुवाद है। इस पर संस्कृत टीका भी डॉ. परड्डी ने लिखी है। सटीक बसवेश्वरशतक मुरुसाविरमठ, हुबली से १९८९ में प्रकाशित है। यह देवनागरी लिपि में मुद्रित है।

डॉ. मल्लिकार्जुन परड्डी ने कबीर के १०१ दोहों का भी संस्कृत में अनुवाद किया है और 'कबीरदासशतकम्' नाम से इसे १९९१ ई. में प्रकाशित कराया है। इसे देखने से डॉ. परड्डी की काव्यप्रतिभा के साथ ही उभयभाषा ज्ञान भी विदित होता है।



अध्याय १२

संस्कृत वीरशैव साहित्य : एक सिंहावलोकन

१. महाकाव्य

(क) रेवणसिद्धचरितम् — ईशानगुरु (९५०ई.)

(ख) हरलीला — उद्भटाराध्य

(ग) प्रभुलीला — मुरिगा गुरुसिद्ध (१७००ई.)

(घ) गङ्गोदयकाव्यम् — अन्नदानीश

(ङ) कविकर्णरसायनम् — षडक्षरदेव

२. पौराणिक काव्य

(क) संहिता — कालिदास (१०२५ई.)

(ख) बसवेशविजयम् — कंचीशंकराराध्य

(ग) पण्डिताराध्यचरितम् — गुरुराज

(घ) शम्भुलिङ्गेश्वरविजयचम्पूः — पण्डरीनाथाचार्य गलगली

(ङ) विजयमहान्तेश चम्पूः और करडीशचम्पूः — पं. पर्वतशास्त्री कन्दगल मठ

३. नाटक

(क) शिवलिङ्गसूर्योदयः — मल्लनाराध्य

(ख) मादरचन्नार्यः — एम. जी. नंजुंडाराध्य

४. गीतिकाव्य

गीतगङ्गाधरम् — केलदी नंजराज (१७००ई.)

५. योग

शिवयोगप्रदीपिका — चन्न सदाशिवयोगी

६. वैद्यकग्रन्थ

(क) रेवणसिद्धकल्पम् (रेवणसिद्धभाष्यम्) — रेवणसिद्ध (१०९५ई.)

(ख) बसवराजीयम् — केलदी बसवराज (१७००ई.)

(ग) वैद्यसारसङ्ग्रहः — केलदी नंजराज (१७०० ई.)

७. भरतशास्त्र

अभिनवभरतसारसङ्ग्रहः — मुम्मडि चिक्कभूपाल (१६००ई.)

८. न्यायशास्त्र

कणादसङ्ग्रहविवरणम् — केलदी नंजराज (१७००ई.)

९. सङ्ग्रहग्रन्थ

(क) हरिमाहात्म्यदर्पणः — केलदी बसवभूपाल (१६९८ई.)

(ख) शिवप्रसङ्गरत्नाकरः — वृषभलिङ्ग शिवयोगी

१०. विश्वकोश

(क) शिवतत्त्वरत्नाकरः — केलदी बसवभूपाल (१६९८-१७१५ई.)

(ख) लिङ्गराजीयम् (विवेकचिन्तामणिः) — रचनाकाल १८०० ई.

११. सुभाषितग्रन्थ

(क) सुभाषितसुरद्रुमः — केलदी बसवभूपाल

(ख) सूक्तिसुधाकरः (संस्कृतकर्नाटकोभयभाषात्मक) — केलदी बसवभूपाल

१२. शतक

(क) शिवाधवशतकम् — मग्गे माइदेव प्रभु (१४३० ई.)

(ख) शिवावल्लभशतकम् — मग्गे माइदेव प्रभु (१४३० ई.)

(ग) त्रिपुरारीश्वरशतकम् — मग्गे माइदेव प्रभु (१४३० ई.)

(घ) ज्ञानशतकम् — सर्पभूषण शिवयोगी (१८०० ई.)

(ङ) आर्याशतकम् — अभिनवकालिदास बसवप्पशास्त्री (१८४३-१८९१ ई.)

१३. गीता

(क) प्रभुगीता — मग्गे माई देवरु

(ख) शङ्करगीता — मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य (११३०-११६९ ई.)

(ग) आनन्दगीता — मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य (११३०-११६९ ई.)

(घ) शरणगीता — टी. जी. सिद्धप्पाराध्य

(ङ) श्रीमत्कुमारगीता — डॉ. पुट्टराजकविगवाई

१४. गद्यग्रन्थ

(क) लिङ्गोद्भवगद्यम् — मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य

(ख) भीमेश्वरगद्यम् — मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य

(ग) बसवाक्षरमालागद्यम् — पाल्कुरिके सोमनाथ

(घ) बसवोदाहरणगद्यम् — पाल्कुरिके सोमनाथ

(ङ) पञ्चप्रकारगद्यम् — पाल्कुरिके सोमनाथ

(च) अक्षराङ्कगद्यम् — पालकुरिके सोमनाथ

(छ) नमस्कारगद्यम् — पालकुरिके सोमनाथ

(ज) वीरभद्रोदाहरणगद्यम् — षडक्षरकवि

१५. एकोत्तरशतस्थल बोधकग्रन्थ

(क) सिद्धान्तशिखामणिः — शिवयोगी शिवाचार्य

(ख) एकोत्तरशतस्थली — जक्कणार्य

(ग) वीरशैवाचारकौस्तुभः — मानप्प पण्डित

(घ) वीरशैवानन्दचन्द्रिका — मरितोंटदार्य

(ङ) कैवल्यासारः — विरक्त तोंटदार्य

१६. ब्रह्मसूत्रभाष्य

(क) श्रीकरभाष्यम् — श्रीपतिपण्डित (१०२०ई.)

(ख) क्रियासारः — नीलकण्ठशिवाचार्य

१७. भाष्यग्रन्थ

(क) वेदभाष्यम् — हरभक्त (चन्नबसवपुराण में उल्लिखित, १२५०ई.)

(ख) पुरुषसूक्तेभाष्यम् — वृषभपण्डित

(ग) ईश-कठ-केन-मुण्डकोपनिषद्भाष्यम् — उमचगी शङ्करशास्त्री (१९३०ई.)

(घ) श्रुतिसारभाष्यम् — अज्ञातकर्तृक

(ङ) कैवल्योपनिषत्सदाशिवभाष्यम् — सदाशिव शिवाचार्य गिरियापुर (१९६०ई.)

(च) श्वेताश्वतरभाष्यम् — डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य

(छ) पुरुषसूक्तभाष्यम् — चिद्घनशर्मा (१९०० ई.)

(ज) रेणुकभाष्यम् — चिद्घनशर्मा (१९०० ई.)

(झ) एकोरामभाष्यम् — चिद्घनशर्मा (१९०० ई.)

(ञ) मञ्चनपण्डितीयम् — चिद्घनशर्मा (१९०० ई.)

(त) सोमनाथभाष्यम् — पाल्कुरिके सोमनाथ

(थ) अमृतेश्वरभाष्यम् — सप्पेश्वरयति

(द) शिवसहस्रनामभाष्यम् — सङ्गमेश्वरयति

(ध) सत्संवित्तिः — मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य

(न) भगवद्गीतावीरशैवभाष्यम् — डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य

१८. आगम ग्रन्थ

कामिकादि अष्टाविंशत्यागमवृन्तातो दीपिकाश्च — सकलागमाचार्य (११५०ई.) (नीलकण्ठाचार्य कन्नडाराध्यचरितम् से ज्ञात)

१९. व्याकरण ग्रन्थ

(क) कौमुदीव्याख्यानम् — त्रिविधकवीश्वर तृतीय (मुम्मडी) तम्मराजा के अनुज (१६६५ई.)

(ख) काशकृत्स्नः — चन्नवीर

२०. अलङ्कारग्रन्थ

(क) रसिकमनोरञ्जनम् — तृतीय (मुम्मडी) तम्मराजा के अनुज (१६६५ई.)

(ख) कविसमयविलासः — सोसले रेवणाराध्य (१६२३ई.)

२१. व्याख्यानग्रन्थ

(क) सिद्धान्तसिखामणिव्याख्यानम् (तत्त्वप्रदीपिका) — मरितोंटदार्य (१६२३ ई.)

(ख) क्रियासारव्याख्या — निर्वाणमन्त्री (१७०० ई.)

(ग) हरिदत्ताचार्यकृत पञ्चश्लोकी व्याख्या — केलदी वीरभद्रनृपाल

(घ) कविकर्णरसायन व्याख्या (सुधोदयः) — वेंगनसुधी (१७०० ई.)

(ङ) विक्रमोर्वशीय व्याख्या — वेमभूपाल

(च) शाकुन्तल व्याख्या — वेमभूपाल

(छ) तात्पर्यसङ्ग्रहव्याख्या — शिवलिङ्गभूपति

(ज) लिङ्गधारणचन्द्रिका व्याख्या — पं. शिवकुमार मिश्र

२२. स्तोत्रकाव्य

(क) श्रीमुखदर्शनम् — मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य (११३०-११६९ ई.)

(ख) रुद्रमहिमा — मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य (११३०-११६९ ई.)

(ग) स्तुतिश्लोकपञ्चकम् — मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य (११३०-११६९ ई.)

(घ) अमरेश्वराष्टकम् — मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य (११३०-११६९ ई.)

(ङ) पर्वतवर्णनम् — मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य (११३०-११६९ ई.)

(च) संसारमायास्तवः — मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य (११३०-११६९ ई.)

(छ) वृषभाष्टकम् — पालकुरिके सोमनाथ (११९५ ई.)

(ज) शिवस्तवमञ्जरी — षडक्षरदेव (१६६५ ई.)

(झ) नमःशिवाष्टकम् — षडक्षरदेव (१६६५ई.)

(ञ) अनादिसिद्धिलिङ्गाष्टकम् — षडक्षरदेव (१६६५ई.)

(ट) शिवस्तोत्रसुमङ्गली — षडक्षरदेव (१६६५ई.)

(ठ) इन्दुधरस्तोत्रम् — षडक्षरदेव (१६६५ई.)

(ड) इष्टलिङ्गाष्टकम् — षडक्षरदेव (१६६५ई.)

(ढ) इष्टलिङ्गस्तवनम् — षडक्षरदेव (१६६५ई.)

(ण) बसवाष्टकम् — षडक्षरदेव (१६६५ई.)

(त) नीलाम्बिकास्तोत्रम् — षडक्षरदेव (१६६५ई.)

(थ) षडक्षरमन्त्रस्तोत्रम् — षडक्षरदेव (१६६५ई.)

(द) तत्त्वत्रयस्तोत्रम् — षडक्षरदेव (१६६५ई.)

(ध) त्रिषष्टिपुरातनस्तव — अभिनवकालिदास बसवप्पशास्त्री (१८४३-१८९१ ई.)

(न) शिवाष्टकम् — अभिनवकालिदास बसवप्पशास्त्री (१८४३-१८९१ ई.)

(प) अम्बाषोडशमञ्जरी — अभिनवकालिदास बसवप्पशास्त्री (१८४३-१८९१ ई.)

(फ) शिवभक्तिसुधारसतरङ्गिणी — अभिनवकालिदास बसवप्पशास्त्री (१८४३-१८९१ई.)

(ब) दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम् — अभिनवकालिदास बसवप्पशास्त्री (१८४३-१८९१ई.)

(भ) शिवाद्यष्टकस्तोत्रमणिमाला — पं. पर्वतशास्त्री कन्दगलमठ।

२३. विधिपरक एवं प्रयोग-प्रचलित ग्रन्थ

(क) वीरशैवाचारकौस्तुभः (क्रियाकाण्डम्) — मानप्प पण्डित

(ख) बिल्ववृक्षपूजाविधिः — अभिनवकालिदास बसवप्प शास्त्री

(ग) गर्भाधानादिविधयः — महान्तशास्त्री

(घ) वैदिकशिवपूजाविधिः — पं. काशीनाथ शास्त्री

(ङ) विवाहविधिः — गुरुशान्तशास्त्री श्री सदाशिवाचार्य

(च) ब्रह्मोपदेशविधिः — उमचिगी शङ्करशास्त्री

(छ) वीरशैवदीक्षाविधिः — श्रीसदाशिव शिवाचार्य

(ज) वीरशैवपूर्वप्रयोगरत्नम् — एम. जी. नंजुंडाराध्य

(झ) वीरशैवउत्तरप्रयोगरत्नम् — एम. जी. नंजुंडाराध्य

(ञ) वीरशैवागमप्रयोगरत्नम् — एम. जी. नंजुंडाराध्य

(ट) वैदिकषट्स्थललिङ्गपूजाविधिः — एम. जी. नंजुंडाराध्य

(ठ) वीरशैवान्त्येष्टिविधिः — पं. काशीनाथ शास्त्री

२४. धार्मिक प्रबन्ध

(क) शैवरत्नाकरः — ज्योतिर्नाथ (११०० ई.)

(ख) वीरमाहेश्वराचरासङ्ग्रहः — नीलकण्ठ नागनाथाचार्य (१३०० ई.)

(ग) वीरशैवधर्मशिरोमणिः — षडक्षर मंत्री (१७००ई.)

(घ) माचिदेवमनोविलासः — आनन्दबसवलिङ्ग योगी (१७०० ई.)

(ङ) अनादिवीरशैवसारसङ्ग्रहः — सम्पादना सिद्धवीरणार्य (१६००ई.)

(च) वीरशैवसिद्धान्तप्रमथगणपद्धतिः — सोसले रेवणार्य (१६२३ई.)

(छ) शिवाधिक्यशिखामणिः — सोसले रेवणार्य (१६२३ई.)

(ज) कर्मपाकप्रदीपिका — सोसले रेवणार्य (१६२३ ई.)

(झ) भक्ताधिक्यरत्नावली — षडक्षरदेव (१६६५ ई.)

(ञ) शिवाधिक्यरत्नावलीसिद्धान्तदीपिका — सर्वशम्भु

(ट) अनुभवसूत्रम् — मग्गे माङ्देव प्रभु (१४३०ई.)

(ठ) विशेषार्थप्रकाशिका — मग्गे माङ्देव प्रभु (१४३०ई.)

(ड) शतकत्रयम् — मग्गे माङ्देव प्रभु (१४३०ई.)

(ढ) ज्ञानशतकम् — सर्पभूषण शिवयोगी

(ण) वेदान्तसारवीरशैवचिन्तामणिः — निट्टूर नंजणार्य

(त) शिवयोगचिन्तारत्नम् — वृषभयोगीन्द्र

(थ) लिङ्गधारणचन्द्रिका — नन्दिकेश्वर (१७०० ई.)

(द) शिवाद्वैतमञ्जरी — स्वप्रभानन्द शिवाचार्य

(ध) क्रियासारः — नीलकण्ठशिवाचार्य (१४०० ई.)

(न) श्रीकरभाष्यम् — श्रीपतिपण्डित

(प) वीरशैवाचारसुधानिधिः — गुरुबसव

(फ) वीरशैवानन्दचन्द्रिका — मरितोंटदार्य (१७४४ई.)

(ब) कैवल्यसारः — मरितोंटदार्य (१७४४ ई.)

२५. धार्मिक प्रबन्ध (अनुपलब्ध)

(क) सोमशम्भुपद्धतिः — सोमशम्भु (११००ई.)

(ख) क्रियासारः — पद्मराज (केरेय पद्मराज)

(ग) लिङ्गसारः — पद्मराज (केरेय पद्मराज)

(घ) तत्त्वसारः — पद्मराज (केरेय पद्मराज)

(ङ) स्वच्छन्दललितभैरवः — पद्मराज (केरेय पद्मराज)

(च) क्रियातिलकः — पद्मराज (केरेय पद्मराज)

(छ) सानन्दचरितम् — पद्मराज (केरेय पद्मराज)

(ज) शिवतन्त्रैककर्ता — विश्वनाथदेशिक

(झ) शिवज्ञानदीपिका — मल्लनार्य

(ञ) सारोद्धारः — लक्ष्मीदेवगुरु

(ट) शिवज्ञानसमुच्चयः — जगदाराध्य नागेश गुरु (११६५ई.)

(ठ) आत्मकर्ता चिन्तामणिः — निजगुण शिवयोगी (१५वीं ई. शताब्दी)

(ड) दर्शनसारः — निजगुण शिवयोगी

२६. शोधप्रबन्ध (संस्कृत गद्य)

(क) सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा — सर्वदर्शनतीर्थ वेदान्ताचार्य जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी (ज्ञानपीठाधीश्वर, जंगमवाडीमठ, वाराणसी)

(ख) शक्तिविशिष्टाद्वैत (वीरशैव) सम्मततत्त्वत्रयविमर्शः — सर्वदर्शनतीर्थ वेदान्ताचार्य जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी (ज्ञानपीठाधीश्वर, जंगमवाडीमठ, वाराणसी)

(ग) शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शनम् — डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य

२७. संस्कृतानुवाद ग्रन्थ

(क) बसववचनामृतम् — एम. जी. नंजुंडाराध्य

(ख) शरणगीता — डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य

(ग) बसवेश्वरशतकम् — डॉ. मल्लिकार्जुन परड्डी

(घ) कबीरदासशतकम् — डॉ. मल्लिकार्जुन परड्डी

(ङ) हानगल् श्रीकुमारमहाशिवयोगिजीवनचरितम् — बसवराजशास्त्री पडगदिन्नीमठ

२८. अन्य वीरशैव ग्रन्थ (अप्रकाशित)

(अ) सोमनाथभाष्यम् — पाल्कुरिके सोमनाथ

(आ) अमृतसप्पेश्वरभाष्यम् — सप्पेश्वरशिवयोगी

(इ) शिवसहस्रनामभाष्यम् — सङ्गमेश्वर यति

(ई) वीरशैवाचारकौस्तुभः — मानप्प पण्डित

(उ) लिङ्गराजीयम् — कोडगिन लिङ्गराज

(ऊ) शैवरत्नाकरः — ज्योतिर्नाथ

(ए) एकोत्तरशतस्थली — जक्कणार्य

(ऐ) शिवज्ञानसमुच्चयः — जगदाराध्य नागेश गुरु

(ओ) माचिदेवमनोविलासः — आनन्दबसवलिङ्ग यति

(औ) वीरशैवसुधानिधिः — गुरुबसवार्य

(क) अथर्वणशाखा साराटिका — अज्ञातकर्तृक

(ख) दशग्रन्थिः — विश्वनाथाचार्य

(ग) वीरशैवशिखामणिटीका — पाल्कुरिके सोमनाथ

(घ) वीरशैवसिद्धान्तदीपिका — वीरभद्र देवरु

(ङ) वीरशैवाचार प्रदीपिका — गुरुदेव

(च) शिवकर्थार्णव — गिरिमल्लिकार्जुन

(छ) शिवप्रसङ्गरत्नाकरः — अज्ञातकर्तृक

(ज) शिवाधिक्य रत्नावली — सोसले रेवणाराध्य

(झ) वीरमाहेश्वर सुधावारिधिः — वेङ्कटाद्रि

(ञ) वीरमाहेश्वराचारसङ्ग्रहः — नीलकण्ठनागनाथाचार्य

(ट) सुभाषितसुरद्रुमः — क़ेलदी बसवभूपाल

(ठ) नन्दीश्वरविजयदण्डकम् — इम्मडी मुरिगा गुरुसिद्ध देशिकेन्द्र

(ड) श्रुतिसारभाष्यम् — शिवपूजा शिवलिङ्ग श्री योगीन्द्र

(ढ) वीरशैवान्वयचन्द्रिका — वीरेश्वर शास्त्री

(ण) सूक्तिसुधाकरः — केलदी बसवभूपाल

(त) सिद्धेश्वरचारित्रम् — ईशानशिवगुरु

(थ) श्रीरेणुकविजयम् — सिद्धनाथ शिवाचार्य

(द) क्रियाकर्मद्योतकः — अघोरशिवाचार्य

(ध) वीरशैवधर्मसिन्धुः — मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य

(न) पुरुषार्थसारः — विश्वेश्वरशिवदेव

(प) तैत्तिरीय तथा महानारायणोपनिद्भाष्यम् — वृषभेन्द्रपण्डितशिवाचार्य

(फ) वीरभद्रपुराणम् — वीरभद्रार्यरु

(ब) वेददीक्षाविधिः — चिक्कवीरार्यरु

(भ) सामगानार्थखण्डनम् — सर्वेश्वरार्यरु

(म) एकोत्तरशतस्थलम् — रेवणसिद्ध शिवाचार्य

(य) परममूलज्ञानप्रशस्तिः — चिक्कवीरण्ण वडेयर

(र) गङ्गोदयः — मल्लिकार्जुन शिवाचार्य

(ल) पञ्चब्रह्मोदयभाष्यम् — सासलु चिक्क वीरणाराध्यरु

(व) वेदान्तसारवीरशैवचिन्तामणि: — सिद्‌ध नंजेश (पूवल्ली मठ)

(श) दशग्रन्थी शिवज्ञानप्रदीपिका — वीरणाचार्य

(ष) त्रिमूर्तिवाद: — वीरणार्य

(स) सिद्धान्तसारावली — त्रिलोचन शिवाचार्य

(ह) हरलीला — उद्‌भटाराध्य

(क्ष) हलायुधस्तोत्रम् — हलायुध

(त्र) लोकाक्षी — वीरणाराध्य

(ज्ञ) वीरभद्रसहस्रम् — चिक्कणाराध्य

इनके अतिरिक्त भी वीरशैव साहित्य के अनेक छोटे बड़े ग्रन्थ अप्रकाशित एवम् अनुपलब्ध है। ऐसी कृतियों की संख्या प्राय: ४०० से भी अधिक है। इनमें प्रमुखत: २८ शिवागम, २२५ आगम, २५३ उपागम हैं। मैसूर के प्राच्य विद्यासंस्थान द्वारा मात्र ८-१० आगम ग्रन्थ ही अब तक प्रकाशित हुए है। इन असंख्य महत्त्वपूर्ण कृतियों का सम्पादन और प्रकाशन करने से वीरशैव धर्म-दर्शन का एक विपुल साहित्य उपलब्ध होने से वीरशैव सम्प्रदाय एवं जिज्ञासु विद्वानों का महान् उपकार होगा, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। अत: इस दिशा में वीरशैव के धर्माचार्यों और विद्वानों को निष्ठापूर्वक उदारभावना से श्रमपूर्ण प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार, ,संस्कृत में वीरशैव की कृतियों का यथासम्भव उपलब्ध विवरण प्रस्तुत किया गया। (परिशिष्ट १,२ और ३ भी द्रष्टव्य है)। इसके आधार पर यह स्पष्टत: प्रतीत होता है कि संस्कृत भाषा में वीरशैव ग्रन्थों की रचना अतिप्राचीन काल से ही होती चली आ रही है। भारतीय इतिहास में शिलालेखों और प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने से वीरशैवों का इतिहास ज्ञात होता है। वीरशैव-परम्परा की प्राचीनता निर्विवाद है। शैवधर्म की एक शाखा के रूप में इसका अस्तित्व बहुत पहले से ही रहा है। दशम शताब्दी ई. में कालामुखी, पाशुपत सम्प्रदाय के गुरुओं, आचार्यों, मठों, देवालयों के माध्यम से संस्कृत में उच्चस्तर के आध्यात्मिक तत्त्वों का बोध कराया जाता था। सालोगडी, बल्लिगावी, कुप्पुतूर, सूडी, हुबली तथा श्रीशैल — इन

स्थानों पर, मठों-देवालयों सहित गुरुकुल, संस्कृत के माध्यम से आध्यात्मिक विद्या के केन्द्र बन गए थे। वीरशैवों की संस्कृत-शिक्षा सरस्वती नदी के समान कभी तीव्र और कभी मन्द गति से प्रवाहित होती रही और कभी लुप्त प्रवाहिनी (अन्तःसलिला) की तरह शिक्षण पद्धति में मातृभाषा पर बल देने का उपक्रम होने पर भी संस्कृत का अध्ययन और विद्वानों द्वारा संस्कृत में ग्रन्थ रचना का कार्य कभी अवरुद्ध नहीं हुआ अपितु निरन्तर चलता रहा। शरणों के काम से शिक्षा को प्रमुखता प्राप्त हुई और शैव शाखा, वीरशैव में रूपान्तरित हुई। इतना ही नहीं, शैव सम्प्रदाय से वीरशैव में आने वाले सभी विद्वान् आचार्य अपने मठों, गुरुकुलों में वेदागमसिद्धान्तों की शिक्षा संस्कृत में ही देते रहे। शरणों की क्रान्ति के पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए। लक्कण दण्डेश द्वारा विरचित 'शिवतत्त्वचिन्तामणि' लगभग ५० कायकों के विषय में जानकारी देती है। उस काल में जंगम धार्मिक शिक्षण के साथ कायक शिक्षण भी दिया करते थे। वीरशैव सम्प्रदाय में ऐसी भी प्रथा का उल्लेख मिलता है कि सरल सामान्य तत्त्वों की शिक्षा तो कन्नड़ में दी जाती थी किन्तु उच्च आध्यात्मिक तत्त्वों की शिक्षा संस्कृत के माध्यम से दी जाती थी। जंगम मठों के नामकरण के सम्बन्ध में ध्यान देने पर एक बात स्पष्ट होती है कि मठों का प्रथम कार्य लोगों को शिक्षित करना ही था। उदाहरण के लिए, ओली मठ (ओदिसुवमठ) – सिखाने का मठ, सालीमठ कूली मठ – वृत्ति शिक्षण मठ, ऐगल मठ – शब्दमणिदर्पण मठ, टीकिन मठ – टिप्पणी मठ, सम्पादनेय मठ – कमाने के मठ। ये नाम हुबली, जमखंडी, अब्बिगेरी जैसी जगहों पर अभी भी प्रचलित हैं। इन मठों में शिक्षा-प्रसार और ग्रन्थ-रचना को दिए गए महत्त्व के लिए इतिहास प्रमाण है। संस्कृत में शिक्षा-प्रसार और ग्रंथ-रचना में जंगमों की पात्रता प्रमुख थी – ऐसा निःसन्देह कहा जा सकता है।

डॉ. मरुलसिद्धय्या का अभिमत है कि संस्कृत में प्रकाशित-अप्रकाशित वीरशैव कृतियों की संख्या लगभग ४०० है। एक अनुमान है कि छोटी-बड़ी सब मिलाकर कृतियों की संख्या १००० भी हो सकती है। वीरशैव की संस्कृत साहित्य में रचनायें बहुत अधिक मात्रा में हैं। अनेक के तो उल्लेख मात्र मिलते हैं और अनुपलब्ध ग्रन्थ भी बहुत अधिक हैं। न जाने कितनी कृतियाँ नष्ट हो गईं और हस्तलिखित ग्रन्थों को सुरक्षित नहीं रखा जा सका।

इनकी गणना करना सम्भव नहीं है। प्राचीन काल में मुद्रण (मशीनरी छपाई) व्यवस्था का अभाव होने से एक ग्रन्थ के बहुत से हस्तलेख नहीं हो पाते थे। एक या दो या कुछ सीमित संख्या में ही इनका प्रसार हो पाता था और उनके नष्ट हो जाने पर फिर उन्हें प्राप्त करना असम्भव ही हो जाता था। उचित रख-रखाव के अभाव, कीड़े इत्यादि के लगने, नमी-सीलन आदि के प्रभाव से, आग लगने या विधर्मियों द्वारा ईर्ष्या-द्वेषवश नष्ट करने से हमारा विपुल साहित्य नष्ट हो गया। उसमें वीरशैव संस्कृत ग्रन्थों की भी प्रचुर संख्या होने से इनकार नहीं किया जा सकता। कभी-कभी अपवित्र किए जाने या दुरुपयोग किए जाने के भय से गुरु-आचार्य विद्वान् दूसरों के समक्ष स्वलिखित ग्रंथों को भयवश प्रकट नहीं करते थे। अज्ञानतावश उन ग्रन्थों का लोप उनके साथ ही हो जाया करता था। लेखन कार्य में कभी-कभी आर्थिक कठिनाई भी आ जाती थी। विषय के अधिकारी पाठकों का अभाव भी ग्रन्थ के प्रकाशन में बाधा बनता है। इन सब स्थितियों के चलते बहुत सा वीरशैव संस्कृत साहित्य नष्ट होकर अनुपलब्ध हो गया।

तमाम विषमताओं और बाधाओं के बावजूद संस्कृत में विपुल वीरशैव साहित्य की रचना हुई। वीरशैव सम्प्रदाय के धार्मिक गुरु-आचार्य-विद्वान् संस्कृत में ग्रन्थों का प्रणयन करते रहे। मौलिक ग्रन्थ, प्रवचन ग्रन्थ, व्याख्या ग्रन्थ और संग्रह ग्रंथों का लेखन संस्कृत में होता रहा और उनका अनुवाद कन्नड़, तेलगु, तमिल, मराठी तथा हिन्दी और अन्यान्य भाषाओं में यथासम्भव होता रहा। अनुवादकार्य सीमित संख्या में होने के कारण वीरशैव संस्कृत साहित्य का प्रचार-प्रसार बहुत नहीं हो पाया और अन्य भारतीय तथा पाश्चात्त्य विद्वानों को इनकी जानकारी नहीं हो पायी। यही कारण है भारतीय वाङ्मय में वीरशैव संस्कृत रचनाकारों के नामों का समुचित मात्रा में उल्लेख नहीं सका है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि वीरशैव संस्कृत साहित्य है ही नहीं। यदि पञ्चाङ्ग में उल्लेख न हो तो क्या आकाश में नक्षत्र मण्डल है ही नहीं?

वीरशैव संस्कृत साहित्य के जो ग्रन्थ प्रकाशित हो गए हैं वे तो प्रायः सर्वत्र उपलब्ध हैं किन्तु इन ग्रन्थों के प्राचीन हस्तलेख (अप्रकाशित) मैसूर, मद्रास (चेन्नई) आड्यार, तंजावूर, बादोदरा (बड़ौदा), लन्दन और वर्लिन के

ग्रन्थालयों, प्राच्यग्रन्थालयों तथा वीरशैव मठों में उपलब्ध होते हैं। पारम्परिक रूप से कुलक्रमागत वीरशैव गुरुओं और पण्डितों के निजी ग्रन्थ संग्रहों में भी ये ग्रन्थ खोजने पर मिल जायेंगे। वीरशैव की अगणित संस्कृत कृतियाँ अपने प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। भारतीय संस्कृति की सम्पन्नता और वीरशैव साहित्य की समृद्धि के लिए इन कृतियों का सम्पादन, व्याख्यान और प्रकाशन अति महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। वीरशैव सम्प्रदाय के मठों, मान्य आचार्यों, संघों, संस्थानों और सभा-समितियों का यह कर्तव्य है कि वे अपने धर्म के उत्थान के लिए, प्रथित-प्रस्थान के लिए न केवल इन हस्तलिखित कृतियों का प्रकाशन करें और करावें अपितु विद्वानों से वीरशैव धर्म के तत्त्वों के पोषक साहित्य का निर्माण कराकर इस दिशा में अपना विशेष महत्त्वपूर्ण योगदान करें।

वीरशैव संस्कृत साहित्य परिमाण और गुणवत्ता – दोनों ही दृष्टियों से महनीय और वैशिष्ट्यपूर्ण है। आज हम इक्कीसवीं शताब्दी ई. में प्रवेश कर चुके हैं। प्राचीन काल से चली आ रही वीरशैव की सारस्वत सुधाधारा आज भी अक्षुण्ण है, प्रवहमान है। हो सकता है प्रवाह की गति किञ्चित् मन्द पड़ी हो किन्तु धारा क्षीण नहीं हुई है। काल और परिस्थितियों का प्रभाव प्रत्येक रचनाधर्मिता पर पड़ना स्वाभाविक है। पाश्चात्त्य संस्कृति के दुष्प्रभाव से जन सामान्य की धार्मिक चेतना और आस्था में ह्रास हुआ है। श्रद्धा शिथिल हुई है और विश्वास भी विचलित हुआ है किन्तु स्थिति निराशाजनक नहीं है। धर्म का स्वरूप जानने वालों और तत्त्वान्वेषी विद्वान् आज भी अनुशीलन में लगे हुए हैं। उनका मनन-चिन्तन अविरत गति से चल रहा है और मन्दगति से ही क्यों न सही, वीरशैव साहित्य की रचना संस्कृत विद्वानों द्वारा आज भी हो रही है। मुद्रण कला की आधुनिक वैज्ञानिक प्रविधियों से ग्रन्थों का प्रकाशन भी अब पहले की अपेक्षा सुगम हो गया है। सञ्चार व्यवस्थाओं की बढ़ती हुई सुविधाओं के कारण प्रकाशित साहित्य का प्रचार प्रसार भी सुकर हो गया है। किन्तु आर्थिक मंहगाई और सुधी पाठकों के अभाव के कारण इस दिशा में अभी उत्साहवर्धक परिणाम सामने नहीं आ रहे हैं। ग्रन्थों का मूल्य यथाशक्ति क्रय-सामर्थ्य की सीमा के अन्दर रखे जाने से और सत्साहित्य के पाठकों के लिए आकर्षक वातावरण बनाने से निश्चय ही इस दिशा में प्रयत्न सफल होंगे और वीरशैव साहित्य

और अधिक उपयोगी हो सकेगा।

१९४०-५० तक दक्षिण कर्नाटक के बेंगलोर और मैसूर में स्थित संस्कृत महाविद्यालयों में वीरशैव संस्कृत साहित्य के अध्ययन की सुविधा न थी किन्तु वीरशैव मठों और शोलापुर, हुबली, धारवाड, मैसूर, बल्लारी, यादगिरि शिवयोग मन्दिर सहित काशी तथा अन्य स्थानों में गुरुकुल और पाठशालाओं में धर्मगुरु, मठाधिपति एवम् अन्य जंगम बनाने के इच्छित जनों को संस्कृत और संस्कृत में वीरशैव साहित्य का अध्ययन करने की पूर्ण सुविधा तथा अनुमति थी। इसके अतिरिक्त दानीजन और अन्य धनाढ्य लोगों द्वारा इस दिशा में प्रोत्साहन और आश्रय प्राप्त होता रहा। महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र और तमिलनाडु के गुरुविरक्त मठों के अधिपति बनने के इच्छुक तथा अन्य भी वीरशैव जन उच्चशिक्षा प्राप्त करने काशी जाते थे और अब भी जा रहे हैं। काशी आने वाले ऐसे लोगों के लिए वहां जंगमवाडी मठ ही आश्रयस्थान है। काशी में जंगमवाही मठ के आश्रय से उच्चशिक्षा प्राप्त कर (दस-पन्द्रह वर्षों तक वहाँ भलीभांति अध्ययन करके) प्रकाण्ड पाण्डित्य अर्जित करके वे लोग लौटते हैं। लगभग विगत पचास वर्षों से मैसूर, बेंगलोर, सिद्धगङ्गा एवं हुबली प्रभृति स्थानों में संस्कृत विद्यालयों और अनेक बड़े मठों में संस्कृत पाठशालाओं को आरम्भ कर सरकार द्वारा इच्छित और अनुरक्त जनों को संस्कृत का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना सराहनीय है।

बीसवीं शताब्दी के वीरशैव संस्कृत विद्वानों में स्वामिजनों सहित कुछ प्रमुख और प्रसिद्ध पण्डितों का नामोल्लेख यहाँ करना अप्रासङ्गिक न होगा। वे हैं — वीरशैवशिवाचार्य जी, शिवानन्द राजेन्द्रस्वामी जी, गौरीशङ्कर स्वामीजी, मरि शान्तवीरस्वामीजी, वीरूपाक्ष वडेयर स्वामीजी, रुद्रमुनिदेव शिवाचार्य जी, वागीश पण्डिताराध्य शिवाचार्य जी, शिवकुमार स्वामीजी, मृत्युञ्जय स्वामीजी, श्री गङ्गाधर राजयोगीन्द्र महास्वामीजी, मल्लिकार्जुन मुरुघराजेन्द्र शिवाचार्य जी, डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी, शिवरुद्र स्वामीजी, इम्मडी शिवबसव स्वामीजी, शान्तकुमार स्वामी जी, आयुर्वेदाचार्य शिवकुमार स्वामीजी, बसवलिंग स्वामीजी, लिंगस्वामीजी, शिवबसवस्वामीजी, शिवलिङ्गस्वामीजी, नीलकण्ठशिवाचार्य जी, गुरुसिद्धदेव शिवाचार्यजी,

अन्नदानीश्वर स्वामीजी, डॉ. ज. च. नि. पालाक्षस्वामीजी, नन्दीश्वरस्वामीजी, निजलिंगेश्वरस्वामी जी, संगन बसव स्वामीजी, मरुलसिद्ध शिवाचार्यजी।

सूची को सीमित न करने से अतिविस्तार होगा। प्रमुख स्वामिजनों का नामोल्लेख करने के पश्चात् उन कुछ प्रमुख और प्रसिद्ध गृहस्थ वीरशैव विद्वानों का नामोल्लेख करना भी समीचीन होगा जिन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण कृतियों से वीरशैव साहित्य का भाण्डार भरा है। वे हैं — उमचगी शङ्कर शास्त्री जी, गुरुशान्तशास्त्रीजी, विलोचन शर्मा जी, गंगाधर शास्त्रीजी, वै. नागेश शास्त्रीजी, पण्डित काशीनाथ शास्त्रीजी, कन्दगल् पर्वतशास्त्रीजी, सिद्धप्पाराध्यजी, नंजुंडाराध्यजी, पडगदिन्नी बसवराज शास्त्रीजी, डॉ. नन्दीमठजी, श्री चन्द्रशेखर शास्त्री जी, डॉ. एस. पी. मल्लदेवरु जी, डॉ. मरुलसिद्धय्याजी, डॉ. शिवकुमार स्वामीजी, सावलगी नीलकण्ठ शर्माजी, श्री उमेश्वरदेवरुजी, विद्वान् एम्. एस्. बसवराजय्या जी, छत्रहल्ली चन्द्रशेखर शास्त्रीजी, चन्नबसवशास्त्रीजी, रेवणसिद्धेश्वर शास्त्रीजी, कालिगणनाथ शास्त्रीजी, षण्मुख शास्त्रीजी, गुरुलिङ्गदेवरु, ए. एल. हिरेमठ, डॉ. मल्लिकार्जुन परड्डी, चिद्घन शर्माजी, शिवमूर्ति शास्त्रीजी, प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी जी आदि। अनुसन्धानपूर्वक सब नाम देने हों तो यह सूची सुदीर्घ हो जायेगी। वीरशैव संस्कृत ग्रन्थरत्न समर्पित कर अपना योगदान करने वाले ऐसे अनेक पूज्य आचार्य, विद्वान् और पण्डित होंगे जो हमारे द्वारा नहीं जाने जा सके हैं। मैं आदरपूर्वक उन्हें प्रणतिनिवेदन करता हूँ और ऐसे जीवित विद्वानों से अपनी इस असमर्थता और अज्ञता के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। अन्ततः,

वीरशैवस्य साहित्यं संस्कृते यद्विनिर्मितम् ।
प्राचीनं वा नवीनं वा सर्वं संशोध्य सूचितम् ।।
अवशिष्टं यदज्ञानादथवा यन्नवं कृतम् ।
कृपया सूचनीयं तद् वीरशैवसमृद्धये ।।
कुर्वन्तु मङ्गलं देवाः प्रसीदन्तु; समे बुधाः ।
ग्रन्थोऽयं कीर्तिमाप्नोतु नन्दन्तु सुधियः सदा ।।

।। इति शमस्तु ।।



परिशिष्ट - १

वीरशैव धर्म-दर्शन के जिज्ञासु अध्येताओं के लिए ग्रन्थ-सूची —

१. *सिद्धान्तशिखामणिः*, शिवयोगी शिवाचार्य, ई. ९००

२. *रेणुकचम्पूः* ईशान शिवगुरु, ई. ९५०

३. *रेवणसिद्धचरितम्* ईशान शिवगुरु, ई. ९५०

४. रेणुकविजयचम्पूः सिद्धनाथ शिवाचार्य, ई. ९६०

५. श्रीकरभाष्यम्, श्रीपति पण्डित, ई. १०००

६. हरलीला, उद्भटाराध्य, ई. १०१०

७. शिवप्रसङ्गरत्नाकरः, वृषभलिङ्ग शिवयोगी, ई. १०९०

८. शैवरत्नाकरः, श्री ज्योतिर्नाथ, ई. ११००

९. शङ्करगीता, मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य, ई. ११३०

१०. आनन्दगीता, मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य, ई. ११३०

११. लिङ्गोद्भवकाव्यम्, मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य, ई. ११३०

१२. भीमेश्वरगद्यम्, मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य, ई. ११३०

१३. एकोत्तरशतस्थली, जक्कनार्य, ई. ११३०

१४. कामिकाद्यष्टाविंशत्यागमवृत्तयः दीपिकाश्च, सकलागमाचार्य, ई. ११५०

१५. सानन्दचरितम्, पद्मराज, ई. ११८०

१६. बसवराजीयम्, पालकुरिके सोमनाथ, ई. ११८०

१७. वीरशैववेदान्तसारः, निट्टूरु नंजनार्य, ई. ११८०

१८. शिवज्ञानदीपिका, मल्लनार्य गुरु, ई. १२००

१९. सारोद्धारः, लक्ष्मीदेव गुरु, ई. १२००
२०. शिवज्ञानसमुच्चयः, जगदाराध्य नागेश गुरु, ई. १२००
२१. वीरमाहेश्वराचारसङ्ग्रहः, नीलकण्ठनागनाथाचार्य, ई. १३००
२२. अनादि वीरशैव सारसङ्ग्रहः, गूलूरु सिद्धवीरणाचार्य, ई. १३००
२३. वातुलोत्तरव्याख्यानम्, गुब्बी मल्लणार्य, ई. १३००
२४. वीरशैवेन्दुशेखरः, सदाशिवशास्त्री, ई. १३००
२५. वीरमाहेश्वराचारसारोद्धारः, लक्ष्मी आराध्य, ई. १३००
२६. वीरशैवोत्कर्षप्रदीपिका, गुरुदेव कवि, ई. १३००
२७. क्रियासारः, नीलकण्ठ शिवाचार्य, ई. १४००
२८. अनुभवसूत्रम्, मायिदेव, ई. १५००
२९. शतकत्रयम् (प्रभुगीता), अज्ञातकर्तृक, ई. १५००
३०. विशेषार्थप्रकाशिका, अज्ञातकर्तृक, ई. १५००
३१. वीरशैवानन्दचन्द्रिका, मरितोण्टदार्य, ई. १५६०
३२. शिवाद्वैतमञ्जरी, स्वप्रभानन्द शिवाचार्य, ई. १५६०
३३. लिङ्गधारणचन्द्रिका, नन्दिकेश्वर, ई. १५६०
३४. कैवल्यसारः, विरक्ततोण्टदार्य, ई. १५६०
३५. शिवयोगप्रदीपिका, चन्न सदाशिवयोगी, ई. १५६०
३६. अमृतेश्वरभाष्यम्, सर्वेश्वर यति, ई. १६००
३७. चोल-रेणुक-संवादः, सोसले रेवणाराध्य, ई. १६७०
३८. शिवाधिक्यशिखामणिः, सोसले रेवणाराध्य, ई. १६७०
३९. सिद्धान्तबोधिनी, सोसले रेवणाराध्य, ई. १६७०
४०. कविकर्णरसायनम्, षडक्षरदेव, ई. १६६४
४१. शिवाधिक्यरत्नावली, षडक्षरदेव ई. १६६४
४२. भक्ताधिक्यरत्नावली, षडक्षरदेव ई. १६६४
४३. वीरशैवान्वयचन्द्रिका, आराध्य वीरेश शास्त्री, ई. १६६४

४४. शिवाद्वैतदर्पणः, शिवानुभव शिवाचार्य, ई. १६६४

४५. शिवाद्वैतपरिभाषा, हूली नीलकण्ठ शिवाचार्य, ई. १६६४

४६. वीरशैवधर्मशिरोमणिः, षडक्षरमन्त्री, ई. १७००

४७. शिवज्ञानप्रदीपिका, विश्वनाथाचार्य, ई. १७००

४८. वीरशैवाचारसुधानिधिः, गुरुबसव, ई. १७००

४९. वीरशैवसदाचारसङ्ग्रहः, नागनाथाचार्य, ई. १७००

५०. श्रुतिसारभाष्यम्, श्रीशिवपूजा शिवलिङ्ग शिवयोगीन्द्र, ई. १७४५

५१. वीरशैवविलासः, पादपूजा बसवलिङ्ग देशिकेन्द्र, ई. १७४५

५२. सव्याख्या पञ्चश्लोकी, बसव सुमतिवास केलदी, ई. १७४५

५३. शिवसहस्रनामभाष्यम्, सङ्गमेश्वर यति, ई. १७८०

५४. वीरशैवाचारकौस्तुभः, मानप्प पण्डित, ई. १८००

५५. सिद्धान्तसारावली, त्रिलोचन शिवाचार्य, ई. १८००

५६. ज्ञानशतकम्, सर्पभूषण शिवयोगी, ई. १८००

५७. शिवलिङ्गसूर्योदयः, मल्लनाराध्य, ई. १८००

५८. लिङ्गराजीयः, लिङ्गराज (कोडगुनृप), ई. १८००

५९. महार्थमञ्जरी, महेश्वरानन्द शिवाचार्य, ई. १९३०

६०. ब्रह्मसूत्रवृत्तिः, अगस्त्यमुनिचन्द्र, ई. १९३०

६१. अष्टप्रकरणम्, अघोरशिवाचार्य, ई. १९३०

६२. ईश-केन-मुण्डकोपनिषद्भाष्यम्, उमचगी शङ्करशास्त्री, ई. १९६०

६३. कैवल्योपनिषद्भाष्य, डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य, ई. १९६०

६४. शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शनम्, डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य, ई. १९६१

६५. शरणगीता, डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य, ई. १९६१

६६. भगवद्गीता-वीरशैवभाष्यम्, डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य, ई. १९६१

६७. श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यम्, डॉ. टी. जी. सिद्धप्पाराध्य, ई. १९६१

६८. सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी, ई. १९८९

६९. तत्त्वत्रयविमर्शः, डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी, ई. १९८९

७०. वीरशैवदर्शनेतिहासदिग्दर्शनम्, डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी, ई. १९८९



परिशिष्ट - २ (क)

धर्मप्रचारकमण्डल, मुरुसाविर मठ, हुबली द्वारा
प्रकाशित वीरशैव-संस्कृत-ग्रन्थ —

१. ***स्तुतिपञ्चकम्*** — श्री मू. ज. गम्

२. ***जगद्गुरु गुरुसिद्धेश्वरचम्पूः*** — डॉ. पुट्टराज कवि

३. ***प्रभुदेववचनम्*** — छत्रदहल्ली चन्द्रशेखर शास्त्री

४. ***करडीशचम्पूः*** — छत्रदहल्ली चन्द्रशेखर शास्त्री

५. ***अक्कमहादेवीशतकम्*** — छत्रदहल्ली चन्द्रशेखर शास्त्री

६. ***मू. ज. गम्-शतकम्*** — छत्रदहल्ली चन्द्रशेखर शास्त्री



परिशिष्ट - २ (ख)

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाडी मठ, वाराणसी द्वारा प्रकाशित
वीरशैव-संस्कृत-ग्रन्थ—

१. **लिङ्गधारणचन्द्रिका** (हिन्दी भावानुवाद सहित) संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

२. **सिद्धान्तशिखामणिः** तत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्याख्यासहित (मराठी भावानुवाद-सहितश्च) संपा. ज. डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी

३. **ब्रह्मसूत्रश्रीकण्ठभाष्यम्** (चतुःसूत्री) अप्पय्यदीक्षितकृतशिवार्कमणिदीपिका (संस्कृत-टीकासहितम्) संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

४. **वीरशैव अष्टावरण विज्ञान** (हिन्दी और मराठी) डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी

५. **सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा** डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी

६. **निगमागम संस्कृति** (हिन्दी) संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

७. **सूक्ष्मागमः** (हिन्दी भावानुवादसहितः) संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

८. **चन्द्रज्ञानागमः** (हिन्दी भावानुवादसहितः) संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

९. **मकुटागमः** (हिन्दी भवानुवादसहितः) संपा. प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय

१०. **कारणागमः** (हिन्दी भावानुवादसहितः) संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

११. **निगमागमीयं** संस्कृतिदर्शनम् (संस्कृत) संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

१२. **पारमेश्वरागमः** (हिन्दी भावानुवादसहितः) संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

१३. **ईशावास्योपनिषद्** (वीरशैवभाष्यसहितः) संपा. पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलंग

१४. **केनोपनिषद्** (वीरशैवभाष्यसहितः) संपा. पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलंग

१५. **सिद्धान्तप्रकाशिका** (हिन्दी भावानुवादसहितः) संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

१६. **शक्तिविशिष्टाद्वैततत्त्वत्रयविमर्शः** ज. डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी

१७. **अनुभवसूत्रम्** संपा. गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

१८. **सिद्धान्तशिखोपनिषद्** (वीरशैवभाष्यसहितः) संपा. पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलंग

१९. **ब्रह्मसूत्रशाङ्करीवृत्तिः** संपा. डॉ. केदारनाथ त्रिपाठी

२०. **सिद्धान्तसारावलिः** संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

२१. **श्रीगुरुगीता** संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

२२. **शिवाद्वैतदर्पणः** शिवानुभव शिवाचार्य

२३. **तन्त्रागमीय ज्ञानकोश** ज. डॉ. चन्द्रशेखर महास्वामीजी इत्यादि

२४. **सिद्धान्तशिखामणिमीमांसा** संपा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी

२५. **Candrjñānāgama** (English Translation) *Dr. Rama Ghose*

२६. **Makuṭāgama** (English Translation) *Dr. Rama Ghose*

२७. **Pārameśvarāgama** (English Translation) *Dr. Rama Ghose*



परिशिष्ट - ३

सहायक ग्रन्थ-सूची

१. *वीरशैव साहित्य और इतिहास, भाग-१ :* श्री बी. शिवमूर्तिशास्त्री

२. *वीरशैवदर्शनेतिहासदिग्दर्शनम्* : डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी

३. *संस्कृत में वीरशैव साहित्य* : षण्मुखय्य अक्कूरमठ

४. *कर्नाटक कविचरिते, भाग-२* : षण्मुखय्य अक्कूरमठ

५. *वीरशैवसाहित्यसमीक्षे* : सं. सदानन्द कनवल्ली और सी. वी. केरिमनि

६. *अनादिवीरशैव समाज अथवा, हलब लिङ्गवन्त* : श्री मल्लिकार्जुन देशिकेन्द्र स्वामी

७. *वीरशैवरत्न* : काशीनाथ शास्त्री

८. *शिवरहस्य* : शं. भा. जोशी

९. *संस्कृत वीरशैव साहित्य* : डॉ. जी. मरुलसिद्धय्या

१०. *शिवदासगीताञ्जलि* : डॉ. एल्. बसवराजु

११. वीरशैववाङ्मय : श्री बाडारु तम्मय्य

१२. *अनुभाव* : अखिल भारत शरणसाहित्य प्रकाशन, १९८७

१३. *वीरशैव साहित्य रश्मि* : डी. जी. हंस प्रकाशन, मंगलोर

१४. Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts Vol. XII, Oriental Research Institute, University of Mysore, 1987

